[2019] 6 एस. सी. आर 1

'X' को स्वीकार करें

वी.

महाराष्ट्र राज्य

(2008 की पुनरीक्षण याचिका (आपराधिक) संख्या 301)

में।

(2007 की आपराधिक अपील संख्या 680)

12 अप्रैल, 2019

[एन. वी. रमना, मोहन एम. शांतनागौदर और

इंदिरा बनर्जी, जे. जे.]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973:

एसएस। 235 (2) और 465-सजा-पूर्व सुनवाई-उद्देश्य और उद्देश्य-क्या सजा-पूर्व सुनवाई, यदि उस पर आयोजित की जाती है

दोषसिद्धि की तिथि, एस के उल्लंघन में है। 235 (2) – आयोजित किया गयाः एस की वस्तु। 235 (2) अभियुक्त को परिस्थितियों को कम करने का अवसर प्रदान करना है-जब तक एस का उद्देश्य है। 235 (2) यह माना जाता है कि अभियुक्त को सजा सुनाने के संबंध में अपने मामले की पैरवी करने का एक वास्तविक और प्रभावी अवसर प्रदान किया जाता है, उसी दिन सजा सुनाने से पहले सुनवाई करने पर कोई रोक नहीं है-यहां तक कि यह मानते हुए कि सजा पर सुनवाई के प्रश्न पर निचली अदालत द्वारा कुछ हद तक प्रक्रियात्मक अनियमितता की गई है, उल्लंघन अपीलीय अदालत द्वारा उपचारात्मक हो सकता है-हालाँकि, एस को देखते हुए। 465 अपीलीय न्यायालय किसी भी त्रुटि या अनियमितता के कारण सक्षम अधिकार क्षेत्र के आदेश को केवल तभी उलट या बदल सकता है जब ऐसी त्रुटि/अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता होती है -

वर्तमान मामले में यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रक्रिया यू/एस की परिकल्पना की गई है। 235 (2) इसका पालन नहीं किया गया।

सजा/सजा

सजा का अधिरोपण-कारण बताने की आवश्यकताः निचली अदालत सजा सुनाने के लिए कारण देने के लिए बाध्य है-कोई भी

सामान्य स्तरों की तुलना में सजा की मात्रा में वृद्धि या कमी को तर्क देने की आवश्यकता है-सिद्धांत को क़ानून यू/एस द्वारा मजबूत किया जाता है। 235 (2) क्र. पी. सी. और न्यायिक व्याख्या द्वारा भी-

हालाँकि, किसी अपराध के बारे में न्यायाधीश की नैतिक और व्यक्तिगत राय/धारणा पर निर्भर किसी भी तर्क से बचने की आवश्यकता है।

[2019] 6 एस सी आर।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

सजा सुनाने का विवेकाधिकार-अभ्यास-आयोजितः सजा देने में विवेकाधिकार का प्रयोग करने की शक्ति का प्रयोग न्यायाधीशों द्वारा किया जाना चाहिए

सैद्धांतिक तरीका-सजा सुनाने में एक सख्त निश्चित सजा दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

मौत की सजा-दोषसिद्धि के बाद की मानसिक बीमारी-क्या मौत की सजा को आजीवन कारावास में बदलने के लिए एक शमन कारक है

कारावास-आयोजितः दोषी ठहराए जाने के बाद की मानसिक बीमारी सजा और गरिमा के अधिकार की सराहना पर आधारित है-संविधान गरिमा, सभ्य मानकों, मानवता और शालीनता की व्यापक और आदर्शवादी अवधारणाओं का प्रतीक है जिसके खिलाफ दंडात्मक उपायों का मूल्यांकन किया जाना है-इसके खिलाफ मजबूत अंतर्राष्ट्रीय सहमति है।

मानसिक बीमारी वाले व्यक्तियों का निष्पादन-विभिन्न जेल नियम भी दोषसिद्धि के बाद की मानसिक बीमारी को सरकार के लिए अपने क्षमादान अधिकार क्षेत्र के तहत विचार करने के लिए एक प्रासंगिक कारक के रूप में मान्यता देते हैं-वर्तमान मामले में, चूंकि अपराध के समय शमन कारक मौजूद नहीं थे, इसलिए इस आधार का उपयोग केवल बीमारी के चरम मामलों में करने की आवश्यकता है-गंभीर मानसिक बीमारी के मूल्यांकन के लिए कोई निर्धारित विकार/अक्षमता नहीं है '-हालाँकि,' गंभीरता का परीक्षण 'उन मानसिक बीमारियों को पहचानने के लिए एक मार्गदर्शक कारक हो सकता है जो

छूट के लिए अर्हता प्राप्त करें-दोषसिद्धि के बाद गंभीर मानसिक बीमारी

किसी अभियुक्त को मृत्युदंड की सजा सुनाते समय अपीलीय न्यायालय को उचित मामलों में इस पर विचार करने की आवश्यकता होगी-ऐसी अक्षमता का आकलन एक बहु-आयामी द्वारा किया जाना है।

योग्य पेशेवरों की अनुशासनात्मक टीम-गंभीर मानसिक बीमारी साबित करने का बोझ अभियुक्त पर है-वर्तमान मामले में अभियुक्त की मानसिक बीमारी के संबंध में मनोचिकित्सक द्वारा मूल्यांकन इस तरह के मूल्यांकन के लिए कोई वस्तुनिष्ठ कारक नहीं है और अधूरा प्रतीत होता है-हालांकि, मामले के तथ्यों में, अभियुक्त के मानसिक स्वास्थ्य के पुनर्मूल्यांकन के लिए एक पैनल का गठन करना उचित नहीं है-मामले की तथ्य स्थिति को देखते हुए, आजीवन कारावास सरलीकरण अपर्याप्त होगा इसलिए, मृत्युदंड को इस प्रकार परिवर्तित किया जाता है -

छूट के किसी भी अधिकार के बिना अपने शेष जीवन के लिए कारावास-भारत का संविधान-कला। 20 (1) और 21-मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017। 3 और 20 (1)-दंड संहिता, 1860-एस। 84 .

मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017:

एस. 103 – जेल में कैदियों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है और उन्हें सड़ने के लिए नहीं छोड़ा जा सकता है-राज्य माता-पिता के संरक्षक के रूप में कार्य करने के लिए बाध्य है-अधिनियम उन लोगों को

मानसिक स्वास्थ्य देखभाल प्रदान करने की इच्छा रखता है जिन्हें आवश्यकता है, जिसमें ए. सी. सी. यू. एस. ई. डी. 'एक्स' वी. भी शामिल है।

महाराष्ट्र राज्य

कैदी-राज्य प्रत्येक राज्य/केंद्र शासित प्रदेश में कम से कम एक जेल की चिकित्सा शाखा में मानसिक स्वास्थ्य प्रतिष्ठान स्थापित करने के लिए बाध्य है-राज्य को अभियुक्त के मामले पर विचार करने का निर्देश दिया गया है।

अधिनियम के उपयुक्त प्रावधान।

आंशिक रूप से पुनरीक्षण याचिका की अनुमति देते हुए, न्यायालय ने

पकड़नाः 1.1 सी. आर. पी. सी. की धारा 235 (2) का तात्पर्य है कि एक बार दोषसिद्धि का निर्णय सुनाए जाने के बाद, न्यायालय सुनवाई करेगा

सजा के प्रश्न पर अभियुक्त और उस स्तर पर, यह खुला है

अभियुक्त को अभिलेख पर ऐसी सामग्री प्रस्तुत करने के लिए जो उसके पक्ष में कम करने वाली परिस्थितियों को दिखाने के लिए उपलब्ध हो। दूसरे शब्दों में, इस स्तर पर अभियुक्त अदालत के ध्यान में लाई गई ऐसी कम करने वाली परिस्थितियों के आधार पर कम सजा देने का तर्क देता है। सी. आर. पी. सी. की धारा 235 (2) अभियुक्त के लिए सजा से पहले सुनवाई को अनिवार्य करती है और एक प्रमुख सिद्धांत को आत्मसात करती है कि सजा 'न्यायालय जो करना चाहता है उसके लिए प्रासंगिक विश्वसनीय, व्यापक जानकारी' पर आधारित होनी चाहिए। यदि अभियुक्त को न्यूनतम सजा देने का प्रस्ताव किया जाता है, तो धारा 235 (2) के तहत अवसर प्रदान करने का सवाल ही नहीं उठेगा। [पैरा 15,16 और 32] [19-बी-डी; 25-सी-डी]

बचन सिंह बनाम। पंजाब राज्य (1980) 2 एससीसी

684 पीछा किया। सेवका पेरुमल बनाम। तमिलनाडु राज्य ए. आई. आर 1991 एस. सी. 1463: [1991] 2 एस. सी. आर. 711; महाराष्ट्र राज्य बनाम।

सुखदेव सिंह (1992) 3 एससीसी 700 [1992] 3 एससीआर

480 ; जय कुमार बनाम. मध्य प्रदेश राज्य ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 1860; अनशद बनाम. कर्नाटक राज्य (1994) 4 एससीसी 381; बी. ए. उमेश बनाम महापंजीयक, कर्नाटक उच्च न्यायालय (2017) 4 एससीसी 124: [2016] 5 एससीआर 438; मुकेश बनाम। राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) (2017) 3 एस. सी. सी. 717; मुकेश बनाम। राज्य (दिल्ली का राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) (2017) 6 एस. सी. सी. 1: [2017] 6 एस. सी. आर. 1; छन्नू लाल वर्मा बनाम छत्तीसगढ़ राज्य

2019 आकाशवाणी 243; संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार (2009) 6 एस. सी. सी. 498: [2009] 9 एससीआर 90; राजेंद्र

प्रहलादराव वसनिक वसनिक बनाम। . महाराष्ट्र राज्य 2019 एआईआर 1; तरलोक सिंह बनाम। पंजाब राज्य (1977) 3

एस. सी. सी. 218 [1977] 3 एस. सी. आर. 711; रामदेव चौहान बनाम

असम राज्य (2001) 5 एससीसी 714: [2001] 3 एससीआर

669 पर भरोसा किया।

19] 6 एस सी आर।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

सांता सिंह बनाम। पंजाब राज्य (1976) 4 एस. सी. सी 190: [1977] 1 एस. सी. आर. 229; डागडू और अन्य बनाम। महाराष्ट्र राज्य (1977) 3 एससीसी 68: [1977] 3 एस. सी. आर. 636; राजेन्द्र प्रसाद बनाम। उत्तर प्रदेश राज्य ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 916 [1979] 3 एस. सी. आर. 78; मुनियप्पन बनाम। तमिलनाडु राज्य (1981) 3 एससीसी 11: [1981] 3 एससीआर 270; अलाउद्दीन मियां बनाम। बिहार राज्य (1989) 3 एससीसी 5: [1989] 2 एससीआर 498; मल्कियत सिंह बनाम। पंजाब राज्य (1991) 4 एससीसी 341: [1991] 2 एस. सी. आर. 256; अंगुस्वामी बनाम।

तमिलनाडु राज्य (1989) 3 एस. सी. सी. 33-संदर्भित।

Cr.P.C की धारा 235 (2) की आवश्यकताएँ. केवल सजा पर पक्षों को सुनने के लिए मामले को एक या दो दिनों के लिए स्थगित करके। यदि अभियुक्त दोषसिद्धि के निर्णय की घोषणा के दिन ही इस पहलू पर अपनी दलीलें प्रस्तुत करने के लिए तैयार है, तो यह है - दोषसिद्धि का निर्णय पारित करने के बाद उसी दिन सजा पर पक्षकारों को सुनने के लिए विचारण न्यायालय के लिए खुला है। किसी मामले में, तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, विचारण न्यायालय अगले दिन या दो दिनों के बाद भी पक्षों को सुनने का विकल्प चुन सकता है। [पैरा 33] [25-ई-जी]

1.3 जब तक धारा 235 (2) की भावना और उद्देश्य पूरा होता है, जब तक कि अभियुक्त को वास्तविक और प्रभावी अधिकार दिए जाते हैं।

सजा सुनाने के संबंध में अपने मामले की पैरवी करने का अवसर, चाहे वह केवल मौखिक प्रस्तुतियों के माध्यम से हो या प्रासंगिक सामग्री को रिकॉर्ड पर लाकर, सजा सुनाने से पहले की सुनवाई पर कोई रोक नहीं है।

उसी दिन हो रही है जिस दिन पूर्व-दोषसिद्धि सुनवाई हो रही है। तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, सजा पर सुनवाई के लिए एक अलग तारीख की आवश्यकता हो सकती है, लेकिन यदि पक्षकार ऐसा करना चाहते हैं तो उसी दिन सजा के सवाल पर बहस करने की समान रूप से अनुमति है। [पैरा 34] [25-जी-एच; 26-ए-बी]

1.4 यहाँ तक कि यह मानते हुए भी कि एक प्रक्रियात्मक अनियमितता है

निचली अदालत द्वारा सजा पर सुनवाई के प्रश्न पर कुछ हद तक किए गए उल्लंघन को अपीलीय अदालत द्वारा सजा पर सुनवाई का पर्याप्त अवसर प्रदान करके ठीक किया जा सकता है। सी. आर. पी. सी. की धारा 465 आदेश देती है कि कोई निष्कर्ष नहीं, 'एक्स' वी को स्वीकार करें।

सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा पारित दंड या आदेश को सुनवाई से पहले या उसके दौरान आदेश, निर्णय और अन्य कार्यवाहियों में किसी भी त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण अपील न्यायालय द्वारा उलट या परिवर्तित किया जाएगा, जब तक कि ऐसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता न हो। इस तरह के गैर-अनुपालन को अपीलीय न्यायालय द्वारा या तो उचित मामलों में मामले को रिमांड करके या स्वयं आरोपी को एक प्रभावी अवसर देकर ठीक किया जा सकता है। [पैरा 35] [26-बी-डी]

1.5 इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि भारत में आपराधिक न्याय प्रणाली के तहत, निचली अदालतों को उच्चतम विवेक प्रदान किया जाता है। कभी-कभी अपीलीय अदालतें, प्रतिस्पर्धी को संरक्षित करने के लिए

खेल में कारक, परीक्षण न्यायालय को संचालित करने के लिए विवेकाधिकार प्रदान करते हैं। हालाँकि, अपीलीय न्यायालय को इस तरह की छूट प्रदान करते समय एक 'सावधानीपूर्ण दृष्टिकोण' अपनाना चाहिए, जो प्रतिबंधित और संतुलित होना चाहिए।

सावधानी के आलोक में तर्कसंगत बनाने और समझने की आवश्यकता है दृष्टिकोण। इस प्रकार, धारा 235 (2) के तहत होने वाली 'सुनवाई' शब्द के लिए अभियुक्त और अभियोजन पक्ष को उनके विकल्प पर एक सार्थक अवसर दिए जाने की आवश्यकता है। धारा के तहत सार्थक सुनवाई

235 (2) सी. आर. पी. सी., सामान्य रूप से, उसी के लिए दिए गए समय या दिनों की संख्या पर सशर्त नहीं है। इसे गुणात्मक रूप से मापा जाना चाहिए न कि मात्रात्मक रूप से। निचली अदालत को सर्वोत्तम प्रयासों के साथ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) के अधिदेश का पालन करने की आवश्यकता है। गैर-अनुपालन को अपीलीय स्तर पर भी सार्थक अवसर प्रदान करके ठीक किया जा सकता है। यदि विचारण न्यायालय द्वारा ऐसा अवसर प्रदान नहीं किया जाता है, तो अपीलीय न्यायालय को विभिन्न विचारों को संतुलित करने और या तो अपने समक्ष एक अवसर प्रदान करने या उचित मामले में विचारण न्यायालय को वापस भेजने की आवश्यकता होती है। नए विचार के लिए। तथापि, अभियुक्त को अपीलीय न्यायालयों को संतुष्ट करने की आवश्यकता है, अन्य बातों के साथ-साथ कम करने वाली परिस्थितियों के अस्तित्व के आधार पर अभिवचन करके, इसके आगे के लिए

विचार करें। कुछ कठोर वास्तविकताओं से अवगत होना जैसे कि लंबी देरी या कानूनी सहायता के माध्यम से जेल अपील आदि, जिसमें अपीलीय न्यायालय, उपयुक्त मामलों में, अदालत द्वारा आदेशित प्रासंगिक तथ्यों पर स्वतंत्र जांच का सहारा ले सकता है। स्वयं। यदि अभियुक्त द्वारा अपीलीय न्यायालयों के समक्ष ऐसा कोई आधार नहीं लाया जाता है, तो यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) के तहत सहारा लेने के लिए बाध्य नहीं है। [पारस 37 और 38] [26-एफ-जी; 27-बी-जी] [2019] 6 एस. सी. आर.

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

1.6 तत्काल मामले के रिकॉर्ड से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि आरोपी को मुकदमे में एक वास्तविक और प्रभावी अवसर दिया गया था

2.2 यह न्यायालय एक 'निश्चित सजा नीति' निर्धारित नहीं कर सकता है, जो कि एक विधायी कार्य है, हालाँकि, भारत में न्यायालयों ने इस समस्या को सैद्धांतिक तरीके से संबोधित किया है - न्यायिक मानकों और सिद्धांतों का सम्मान करना। न्यायिक रूप से निर्धारित ये सिद्धांत न केवल निर्देशात्मक दिशानिर्देशों के रूप में काम करते हैं, बल्कि सजा सुनाते समय विचारण न्यायाधीशों के आवश्यक विवेक को भी संरक्षित करते हैं। हालाँकि, सजा की एकरूपता प्राप्त करने के लिए न केवल न्यायिक प्रयासों की आवश्यकता हो सकती है, बल्कि विधायिका को भी कदम उठाने की आवश्यकता हो सकती है। [पैरा 50] [31-ए-सी]

सुनील दत्त शर्मा बनाम। राज्य (एन. सी. टी. दिल्ली की सरकार) (2014) 4 एससीसी 375: [2013] 9 एस. सी. आर. 1000-पर निर्भर।

में सुधारों पर मलिमथ समिति की रिपोर्ट

आपराधिक न्याय प्रणाली-संदर्भित।

2.3 सजा आपराधिक प्रतिबंधों का उचित आवंटन है, जो ज्यादातर न्यायिक शाखा द्वारा दिया जाता है। परीक्षण के अंत में होने वाली इस प्रक्रिया का अभी भी ACCUSED 'X' v पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

महाराष्ट्र राज्य

आपराधिक न्याय प्रणाली की प्रभावकारिता। यह स्थापित किया गया है कि सजा सुनाना एक सामाजिक-कानूनी प्रक्रिया है, जिसमें एक न्यायाधीश तथ्यात्मक परिस्थितियों और समानताओं को ध्यान में रखते हुए आरोपी के लिए उचित सजा पाता है। इस तथ्य के आलोक में कि विधायिका ने न्यायाधीशों को देने के लिए विवेकाधिकार प्रदान किया

सजा, एक सैद्धांतिक तरीके से उसी का प्रयोग करना महत्वपूर्ण हो जाता है। सजा सुनाने में एक सख्त निश्चित सजा का दृष्टिकोण स्वीकार्य नहीं हो सकता है, क्योंकि न्यायाधीश के पास पर्याप्त विवेकाधिकार भी होना चाहिए। [पैरा 47] [30-बी-सी]

2.4 यह देखते हुए कि सजा सुनाने के विवेकाधिकार का एक बड़ा हिस्सा सैद्धांतिक है, भारत में एक न्यायाधीश को सजा के व्यापक उद्देश्यों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है, जो कि निवारण, अक्षमता, पुनर्वास, प्रतिशोध और क्षतिपूर्ति (जहां भी लागू हो) हैं, जब तक कि विधायिका द्वारा विशेष रूप से विकल्प के रूप में निर्दिष्ट नहीं किया जाता है। ऊपर पहचाने गए उद्देश्य, कानून में अपराध-उन्मुख सजा से एक समग्र दृष्टिकोण की ओर बदलाव को चिह्नित करते हैं जिसमें अपराध, अपराधी और पीड़ित को सामूहिक रूप से ध्यान में रखा जाना चाहिए। [पैरा 52] [31-ई-जी]

राजेन्द्र प्रसाद बनाम। उत्तर प्रदेश राज्य (1979) 3 एस. सी. सी. 646 [1979] 3 एस. सी. आर. 78; पियारे दुसाद बनाम। राजा।

सम्राट ए. आई. आर. 1944 एफ. सी. 1-संदर्भित।

2.5 विचारण न्यायालय का तर्क किए गए अपराध के लिए सजा के सामान्य स्तर के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करता है और

तथ्य और परिस्थितियाँ। निचली अदालत सजा के अधिरोपण के लिए कारण देने के लिए बाध्य है, क्योंकि सबसे पहले, यह प्राकृतिक न्याय का एक मौलिक सिद्धांत है कि न्यायनिर्णायकों को निर्णय तक पहुंचने के लिए कारण प्रदान करने चाहिए और दूसरा, कारण अधिक महत्व रखते हैं क्योंकि अभियुक्त की स्वतंत्रता उपरोक्त तर्क के अधीन है। इसके अलावा, अपीलीय न्यायालय की मात्रा की शुद्धता का आकलन करने के लिए बेहतर सक्षम है सजा को चुनौती दी गई है, यदि निचली अदालत ने कारणों के साथ इसे उचित ठहराया है। उपरोक्त सिद्धांत को न केवल दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) के तहत क़ानून द्वारा बल्कि न्यायिक व्याख्या द्वारा भी मजबूत किया गया है। सामान्य स्तरों की तुलना में सजा की मात्रा में किसी भी वृद्धि या कमी के लिए निचली अदालत द्वारा तर्क दिए जाने की आवश्यकता है। हालांकि, किसी अपराध के बारे में न्यायाधीश की नैतिक और व्यक्तिगत राय/धारणा पर निर्भर किसी भी तर्क से हर कीमत पर बचने की आवश्यकता है। [पैरा 48] [30-डी-एफ] [2019] 6 एस. सी. आर.

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

3.1 सजा सुनाने में आम तौर पर अभियुक्त की स्वतंत्रता और स्वतंत्रता में कटौती शामिल होती है। संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत,

जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार को तब तक बाधित नहीं किया जा सकता जब तक कि इसे न्यायिक कानूनों द्वारा नहीं लिया जाता है। [पैरा 56] [33-डी]

3.2 आम तौर पर, कम करने वाले कारक इसके साथ जुड़े होते हैं

3.3 वर्तमान मामला मृत्युदंड से संबंधित है, जो अनिवार्य रूप से जीवन के अधिकार को प्रभावित करता है, और विभिन्न प्रावधानों के अधीन है। आपराधिक न्याय प्रणाली के तहत मूल और प्रक्रियात्मक सुरक्षा। जीवन के अधिकार का एक अपरिवर्तनीय मूल 'गरिमा' है। मनुष्य की गरिमा में समझने की क्षमता, तर्कसंगतता निहित है।

चयन, और मानव स्वभाव में निहित स्वतंत्र इच्छा, आदि। का अधिकार

एक अभियुक्त की गरिमा न्यायाधीशों की स्याही से सूख नहीं जाती है, बल्कि यह जेल के फाटकों से बहुत आगे तक बनी रहती है और तब तक चलती है जब तक कि उसकी स्याही नहीं निकल जाती।

आखिरी सांस। [पैरा 56] [33-बी]

नवतेज सिंह जौहर बनाम। यूनियन ऑफ इंडिया एआईआर 2018 एससी 4321 : [2018] 7 एस. सी. आर. 379; सामान्य कारण v. भारत संघ ए. आई. आर. 2018 एस. सी. 1665: [2018] 6 एस. सी. आर. 1-संदर्भित

को।

3.4 मानसिक रूप से बीमार कैदियों के संदर्भ में यह उल्लेख करना उचित है कि मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 की धारा 20 (1), 2017 का अधिनियम संख्या 10, स्पष्ट रूप से प्रदान करता है कि प्रत्येक व्यक्ति मानसिक बीमारी को गरिमा के साथ जीने का अधिकार होगा। [पैरा 56] [33-जी]

3.5 सभी मनुष्यों में वे क्षमताएँ होती हैं जो उनके स्वभाव में निहित होती हैं, हालाँकि, शैशवावस्था, अक्षमता या वृद्धावस्था के कारण, वे अभी तक, अभी नहीं, या अब उन्हें प्रयोग करने की क्षमता नहीं रखते हैं। जब ऐसी अक्षमता होती है, तो एक व्यक्ति एक में नहीं हो सकता है

उसके कार्यों के निहितार्थ और उसके परिणाम को समझने की स्थिति। इस स्थिति में, इस तरह के एक निष्पादन व्यक्ति कानून की महिमा को कम कर देगा। [पैरा 57] [33-जी-एच; 34-ए]

3.6 भारतीय संविधान का अनुच्छेद 20 (1) अभियुक्त के लिए अपराध के बारे में संचार/ज्ञान के विचार को आत्मसात करता है और इसकी सजा। यह संवादात्मक तत्व है, जिसे 'X' v माना जाता है।

सजा (मृत्युदंड) में निहित, जो एक आपराधिक कार्यवाही में सजा को अर्थ देता है। मृत्युदंड की धारणा और इसके साथ आने वाली पीड़ा, अक्षमता का कारण बनती है और प्रतिरोध की भावना का आह्वान करने के लिए आदर्श है। यदि अभियुक्त अपनी अक्षमता के कारण अपने निष्पादन के प्रभाव और उद्देश्य को समझने में सक्षम नहीं है, तो निष्पादन का कारण ही समाप्त हो जाता है। [पैरा 58] [34-ए-सी]

एटकिन्स वी। वर्जीनिया 536 यू. एस. 304 (2002)-संदर्भित।

3.7 इसके अलावा, संविधान का अनुच्छेद 20 गारंटी देता है

विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर समझौता, जो विकलांग व्यक्तियों के संबंध में 'क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक दंड के निषेध' का समर्थन करता है। इसके अतिरिक्त, मानसिक बीमारी वाले व्यक्तियों के निष्पादन के खिलाफ एक मजबूत अंतर्राष्ट्रीय सहमति है। [पैरा 60] [34-ई-जी] 3.8 भारत में विभिन्न जेल नियम यह भी मानते हैं कि आम तौर पर सरकार का कर्तव्य है कि वह फांसी पर उचित आदेश पारित करे, यदि कोई व्यक्ति पागल पाया जाता है। इस प्रकार जेल

नियम पहले से ही दोषसिद्धि के बाद की मानसिक बीमारी को सरकार के लिए अपने क्षमादान अधिकार क्षेत्र के तहत विचार करने के लिए एक प्रासंगिक कारक के रूप में मान्यता दे चुके हैं। [पैरा 61] [35-ए; सी]

3.9 यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि आई. पी. सी. के तहत मान्यता प्राप्त पागलपन और वर्तमान मामले में मानसिक बीमारी एक अलग चरण और समय पर उत्पन्न होती है। आई. पी. सी. के तहत, धारा 84 आपराधिक अभियोजन के खिलाफ बचाव के रूप में कानूनी पागलपन की याचिका को मान्यता देती है। यह बचाव इसके अनुप्रयोग में प्रतिबंधित है और अपराध किए जाने के क्षण से संबंधित है। इसलिए, आई. पी. सी. की धारा 84 अपराध के समय पुरुषों के अधिकार से संबंधित है, जबकि दोषसिद्धि के बाद की मानसिक बीमारी की याचिका सजा की सराहना और गरिमा के अधिकार पर आधारित है। उपरोक्त को रेखांकित करने वाले विभिन्न मानक मानकों का अर्थ अलग-अलग सीमा मानकों से भी है। [पैरा 63] [35-एफ-एच] [2019] 6 एस. सी. आर.

सुरेंद्र मिश्रा बनाम। झारखंड राज्य (2011) 3 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 232; अमृत भूषण गुप्ता बनाम। भारत संघ एआईआर 1977 एससी 608: [1977] 2 एस. सी. आर. 240-पर निर्भर था।

3.10 इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि मामला प्रक्रिया के अंतिम चरण में है और कम करने वाले कारक इस पर उभर नहीं रहे थे अपराध करने का समय, इसलिए इस आधार का उपयोग केवल मानसिक बीमारी के चरम मामलों में किया जाना चाहिए, जो कि सीमांत प्रतिशोध के तत्व को ध्यान में रखते हुए है। किसी भी मामले में, यह देखते हुए कि भारत ने एक अंतरराष्ट्रीय मंच पर मानसिक रोगियों को क्रूर और असामान्य दंड के साथ दंडित नहीं करने का दायित्व लिया है, इस न्यायालय के लिए एक परीक्षण का प्रावधान करना आवश्यक होगा जिसमें केवल मानसिक रूप से बीमार दोषियों के चरम मामलों को ही निष्पादित नहीं किया जाता है। इसके अलावा, यह न्यायालय इसके खिलाफ चेतावनी देता है

इस तरह के बचाव का अनुरोध करके फांसी से बचने के लिए एक चाल के रूप में इस उक्ति का उपयोग करना, भले ही ऐसी बीमारी गंभीर गंभीरता की न हो।

[पैरा 64] [36-ए-सी]

3.11 ' 'रोगों के अंतर्राष्ट्रीय वर्गीकरण (आई. सी. डी.)' के तहत गंभीर मानसिक बीमारी, जिसे मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 की धारा 3 के तहत स्वीकार किया जाता है, आम तौर पर शामिल होती है।

स्किज़ोफ्रेनिक और भ्रम संबंधी विकार, मनोदशा (भावात्मक) विकार, जिनमें अवसादग्रस्तता, उन्मादी और द्विध्रुवी रूप शामिल हैं, न्यूरोज़, जिनमें फोबिक, पैनिक और जुनूनी-बाध्यकारी विकार, व्यवहार संबंधी विकार, जिसमें खाना, नींद और तनाव विकार, विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व विकार शामिल हैं। [पैरा 66] [36-जी-एच; 37-ए-बी] 3.12 'गंभीर मानसिक बीमारी' के मूल्यांकन के लिए कोई निर्धारित विकार/अक्षमता नहीं है, हालांकि 'गंभीरता का परीक्षण' उन मानसिक बीमारियों को पहचानने के लिए एक मार्गदर्शक कारक हो सकता है जो योग्य हैं।

छूट के लिए। इसलिए, यहाँ परिकल्पित परीक्षण यह भविष्यवाणी करता है कि अपराधी को गंभीर मानसिक बीमारी होनी चाहिए या अक्षमता, जिसका सीधा सा अर्थ है कि एक चिकित्सा पेशेवर निष्पक्ष रूप से बीमारी को सबसे गंभीर मानेगा ताकि वह इस तरह की सजा देने के पीछे की प्रकृति और उद्देश्य को समझ या समझ न सके। इन विकारों में आम तौर पर सिज़ोफ्रेनिया, अन्य गंभीर मनोवैज्ञानिक विकार और विघटनकारी विकार शामिल हैं-सिज़ोफ्रेनिया के साथ। [पैरा 68] [37-ई-एफ] ने 'एक्स' वी को स्वीकार किया।

महाराष्ट्र राज्य

3.13 भविष्य के मामलों में निम्नलिखित निर्देशों का पालन करने की आवश्यकता है: कि दोषी ठहराए जाने के बाद गंभीर मानसिक बीमारी होगी किसी अभियुक्त को मृत्युदंड की सजा सुनाते समय अपीलीय न्यायालय को उचित मामलों में जिन कारकों पर विचार करने की आवश्यकता है, उन्हें कम करना। ऐसी अक्षमता का मूल्यांकन अभियुक्त की विशेष मानसिक बीमारी में विशेषज्ञता वाले पेशेवरों सहित योग्य पेशेवरों (अनुभवी चिकित्सा व्यवसायियों, अपराधविज्ञानी आदि) की एक बहु-अनुशासनात्मक टीम द्वारा किया जाना चाहिए। अभियुक्त पर यह बोझ है कि वह स्पष्ट साक्ष्यों की प्रचुरता से यह साबित करे कि वह गंभीर मानसिक बीमारी से पीड़ित है। अभियुक्त को सक्रिय, अवशिष्ट या प्रोड्रोमल लक्षण प्रदर्शित करने होते हैं, कि गंभीर मानसिक अक्षमता प्रकट हो रही थी। राज्य इस तरह के दावे का खंडन करने के लिए सबूत पेश कर सकता है। उचित मामलों में न्यायालय कर सकता है

एक विशेषज्ञ रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए एक पैनल का गठन करें। यहाँ परिकल्पित 'गंभीरता की जाँच' यह भविष्यवाणी करती है कि अपराधी को गंभीर मानसिक बीमारी या अक्षमता की आवश्यकता है, जिसका सीधा सा अर्थ है कि निष्पक्ष रूप से बीमारी को सबसे गंभीर होने की आवश्यकता है ताकि आरोपी इस तरह की सजा के अधिरोपण के पीछे की प्रकृति और उद्देश्य को समझ या समझ न सके। [पैरा 69] [37-जी-एच; 38-ए-डी]

3.14 वर्तमान मामले में, अभियुक्त ने प्रथम श्रेणी के मनोचिकित्सक की एक रिपोर्ट प्रस्तुत की है, जिसमें संकेत दिया गया है कि वह रोग से पीड़ित था।

इस तरह के मूल्यांकन के लिए कोई वस्तुनिष्ठ कारक प्रदान किए बिना किसी प्रकार की मानसिक बीमारी। इसके अलावा, महाराष्ट्र चिकित्सा परिषद में पंजीकृत एक मनोचिकित्सक द्वारा दी गई विशेषज्ञ राय सेंटर फॉर मेंटल हेल्थ लॉ एंड पॉलिसी, इंडियन लॉ सोसाइटी, पुणे के सह-समन्वयक के रूप में कार्य करना आगे कोई स्पष्टता प्रदान नहीं करता है। अदालत डॉक्टरों द्वारा दिए गए इस तरह के बयानों से संतुष्ट नहीं है क्योंकि मूल्यांकन अधूरा प्रतीत होता है। हालाँकि, वर्तमान अभियुक्त 1994 से किसी प्रकार की मानसिक चिड़चिड़ापन से जूझ रहा है, जैसा कि अभिलेखों से स्पष्ट है। इसके अलावा, उन्होंने लंबे समय तक कारावास के साथ-साथ मौत की सजा का भी सामना किया है। परिस्थितियों की समग्रता में, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उसकी मानसिक स्थिति के पुनर्मूल्यांकन के लिए एक पैनल का गठन करना उचित नहीं है। [पारस 70,71 और 72] [38-ई; एच; 39-सी-डी]

3.15 साथ ही, तत्काल मामले में आजीवन कारावास की सजा पूरी तरह से अपर्याप्त होगी। अपराध के बर्बर और क्रूर तरीके को देखते हुए, [2019] 6 एस. सी. आर.

अपराध की गंभीरता, याचिकाकर्ता द्वारा पीड़ितों के विश्वास का दुरुपयोग, और ऐसे अपराध करने की उसकी प्रवृत्ति जो उसके पिछले आचरण से स्पष्ट है, यह अत्यंत स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता समाज के लिए इतना गंभीर खतरा पैदा करता है कि उसे अनुमति नहीं दी जा सकती है।

अपने जीवन के शेष। यह मीडिया के माध्यम से उपयोगी है मृत्युदंड और आजीवन कारावास की सजा (जो आमतौर पर छूट पर 14 साल तक की जेल होती है)। याचिका को इस हद तक अनुमति दी जाती है कि सजा

याचिकाकर्ता को दी गई मृत्यु की सजा को माफी के किसी भी अधिकार के बिना उसके शेष जीवन के लिए कारावास में परिवर्तित कर दिया जाता है।

[पारस 73 और 74] 39-ई-एच; 40-ए-बी]

स्वामी श्रद्धानंद (2) v. कर्नाटक राज्य (2008) 13 एससीसी 767: [2008] 11 एस. सी. आर. 93; भारत संघ बनाम। वी. श्रीहरण (2016) 7 एससीसी 1: [2015] 14 एस. सी. आर. 613; तत्तु लोधी बनाम। मध्य प्रदेश राज्य (2016) 9 एससीसी 675:

[2016] 3 एस. सी. आर. 561-निर्भर।

शत्रुघ्न चौहान बनाम। भारत संघ (2014) 3 एससीसी 1: [2014] 1 एससीआर 609; नवनीत कौर बनाम। राज्य (दिल्ली का राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) (2014) 7 एस. सी. सी. 264: [2014] 4 एस. सी. आर. 1138; वसंत संपत डुपारे बनाम। महाराष्ट्र राज्य (2017) 6 एससीसी

631 [2017] 3 एस. सी. आर. 850-संदर्भित।

4.1 यह 'अभियुक्त x' की स्थिति है जो राज्य को माता-पिता के संरक्षक के रूप में कार्य करने के लिए बाध्य करती है। इस स्थिति में 'अभियुक्त x' को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है और उसे सड़ने के लिए नहीं छोड़ा जा सकता है, बल्कि उसे देखभाल और उपचार की आवश्यकता होती है। आम तौर पर, यह समझने की आवश्यकता है कि कैदियों में मानसिक बीमारी के प्रति लगाव बढ़ जाता है। इसके अलावा, आपराधिक न्याय प्रणाली के भीतर व्यापक मानसिक बीमारी की मान्यता पर कानूनी बाधाओं के कारण, जेल अनिवार्य रूप से हो जाते हैं

विभिन्न स्तरों के मानसिक रूप से बीमार कैदियों की एक बड़ी संख्या के लिए घर। इस तथ्य की कोई अनदेखी नहीं है कि जेल की दीवारों के भीतर की वास्तविकताएं इन समस्याओं को अच्छी तरह से जटिल और जटिल बना सकती हैं। [पैरा 75] [40-बी-सी] 4.2 इसे संबोधित करने के लिए, मानसिक स्वास्थ्य सेवा अधिनियम, 2017 को लागू किया गया था। अधिनियम की आकांक्षा 'X' v को स्वीकार किया गया था।

महाराष्ट्र राज्य

कैदियों सहित जरूरतमंद लोगों के लिए मानसिक स्वास्थ्य देखभाल सुविधा प्रदान करना। राज्य सरकारें अधिनियम की धारा 103 के तहत प्रत्येक राज्य और केंद्र शासित प्रदेश में कम से कम एक जेल की चिकित्सा शाखा में एक मानसिक स्वास्थ्य प्रतिष्ठान स्थापित करने के लिए बाध्य हैं, और मानसिक बीमारी वाले कैदियों को आम तौर पर

उक्त मानसिक स्वास्थ्य प्रतिष्ठान में संदर्भित और देखभाल की गई। इसलिए, राज्य सरकार को निर्देश दिया जाता है कि वह मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम, 2017 के उपयुक्त प्रावधानों के तहत 'आरोपी एक्स' के मामले पर विचार करे और यदि वह हकदार पाया जाता है, तो उस अधिनियम के तहत उसके अधिकारों का प्रावधान करे। [पारस 76 और 77] [40-ई-एफ]

लाइब्लिंग, मारुना और मैकएरा आदि। , ऑक्सफोर्ड अपराध विज्ञान की पुस्तिका (छठा संस्करण। (2017)) – संदर्भित

को। मोहम्मद . आरिफ @अशफाक बनाम। पंजीयक, सर्वोच्च

भारतीय न्यायालय (2014) 9 एस. सी. सी. 737: [2014] 11 एससीआर 1009

संदर्भित किया गया।

मामला कानून संदर्भ

[2014] 11 एससीआर 1009

संदर्भित किया गया है

पै

रा 8

(1980) 2 एस. सी. सी. 684

पीछा किया।

पै

रा 10

[2014] 1 एससीआर 609

पै

रा 10

संदर्भित किया गया है

[2014] 4 एससीआर 1138

संदर्भित किया गया है

पै

रा 10

[2017] 3 एससीआर 850

संदर्भित किया गया है

पै

रा 11

[1977] 1 एससीआर 229

संदर्भित किया गया है

पै

रा 18

[1977] 3 एससीआर 636

पै

रा 19

संदर्भित किया गया है

[1979] 3 एससीआर 78

संदर्भित किया गया है

पै

रा 20

[1981] 3 एससीआर 270

संदर्भित किया गया है

पै

रा 21

[1989] 2 एससीआर 498

संदर्भित किया गया है

पै

रा 22

[1991] 2 एससीआर 256

पै

रा 22

संदर्भित किया गया है

[1991] 2 एससीआर 711

उस पर भरोसा करें

पै

रा 23

[1992] 3 एससीआर 480

उस पर भरोसा करें

पै

रा 24

उस पर भरोसा करें

पै

रा 24

AIR 1999 SC 1860 [2019] 6 S. C.

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

4 एस. सी. सी. 381

उस पर भरोसा करें

(1994)

पै

रा 25

[2016] 5 एससीआर 438

उस पर भरोसा करें

पै

रा 26

(2017) 3 एस. सी. सी. 717

उस पर भरोसा करें

पै

रा 27

[2017] 6 एससीआर 1

उस पर भरोसा करें

पै

रा 28

उस पर भरोसा करें

पै

रा 29

2019 एयर 243

[2009] 9 एससीआर 90

उस पर भरोसा करें

पै

रा 29

उस पर भरोसा करें

2019 एयर 1

पै

रा 30

(1989) 3 एससीसी 33

पै

रा 31

संदर्भित किया गया है

[1977] 3 एससीआर 711

उस पर भरोसा करें

पै

रा 32

[2001] 3 एससीआर 669

उस पर भरोसा करें

पै

रा 32

[2013] 9 एससीआर 1000

उस पर भरोसा करें

पै

रा 50

[1979] 3 एससीआर 78

संदर्भित किया गया है

पै

रा 51

संदर्भित किया गया है

ए. आई. आर 1944 एफ. सी. 1

पै

रा 54

[2018] 7 एससीआर 379

संदर्भित किया गया है

पै

रा 56

[2018] 6 एससीआर 1

पै

रा 56

संदर्भित किया गया है

उस पर भरोसा करें

(2011) 3 एस. सी. सी (सी. आर. आई.) 232]

पै

रा 63

[1977] 2 एससीआर 240

उस पर भरोसा करें

पै

रा 63

[2008] 11 एससीआर 93

उस पर भरोसा करें

पै

रा 64

[2015] 14 एससीआर 613

उस पर भरोसा करें

पै

रा 64

[2016] 3 एससीआर 561

उस पर भरोसा करें

पै

रा 64

आपराधिक अपील न्यायनिर्णयः पेटी की समीक्षा करें

(आपराधिक) 2007 की आपराधिक अपील संख्या 680 में 2008 की संख्या 301।

सुप्रीम कोर्ट के 16.05.2008 दिनांकित निर्णय और आदेश से

2007 की आपराधिक अपील संख्या 680 में भारत का न्यायालय।

सुश्री नित्या रामकृष्णन, शादान फरासत, सादुज्जमान,

एस. विजय, सुश्री निन्नी सुसान थॉमस, सुश्री श्रुति नारायण, सुश्री जाह सिंधु, अधिवक्ता। याचिकाकर्ता के लिए।

निशांत रमाकांतराव कटनेश्वरकर, अनूप कंदारी, अधिवक्ता

उत्तरदाता।

ACCUSED 'X' v. महाराष्ट्र राज्य

न्यायालय का निर्णय इसके द्वारा दिया गया था

एन. वी. रमना, जे.

1. तत्काल कार्यवाही समीक्षा याचिका (सी. आर. एल.) को फिर से खोलने से संबंधित है। समीक्षा याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को खारिज करते हुए 2007 की आपराधिक अपील संख्या 680 में इस न्यायालय द्वारा पारित अंतिम निर्णय और आदेश की समीक्षा के लिए 2008 का सं. 301 (इसके बाद) " याचिकाकर्ता) और भारतीय दंड संहिता की धारा 201,363,376 और (संक्षेप में, आई. पी. सी.) के तहत अपनी दोषसिद्धि की पुष्टि करता है। विवादित फैसले के दौरान, इस अदालत ने याचिकाकर्ता को धारा 201 और 363 के तहत 2-2 साल के कठोर कारावास, धारा 376 के तहत 10 साल के कठोर कारावास और आई. पी. सी. की धारा 302 के तहत मौत की सजा को बरकरार रखा।

2. यह याचिका मानसिक बीमारी और अपराध के बीच संबंधों के बारे में जटिल सवाल उठाती है। दोष का आकलन कैसे किया जा सकता है

मानसिक बीमारी वाले लोगों को सजा देना? क्या इलाज सजा से बेहतर है? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन पर हमें विचार करने की आवश्यकता है।

3. मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 (2017 का अधिनियम 10) की धारा 23 (1) और इसमें अभियुक्त की निजता के अधिकार के अनुरूप, जबकि

इस फैसले पर आगे की कार्रवाई करते हुए, हम रजिस्ट्री को निर्देश देते हैं कि वह आरोपी के वास्तविक नाम और अन्य प्रासंगिक जानकारी का खुलासा न करे जिससे उसकी पहचान हो सकती है क्योंकि यह गोपनीय है। जानकारी दी। इस संदर्भ में हम यहाँ अभियुक्त को 'अभियुक्त x' के रूप में संबोधित करेंगे।

4. वर्तमान याचिका को जन्म देने वाले संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं; दो मृतक, अर्थात्। पीड़ित-1 (चौथी कक्षा में पढ़ने वाला) और पीड़ित-2 (पहली कक्षा में पढ़ने वाला) गुलंब में रहने वाले चचेरे भाई थे।

महाराष्ट्र, रामदास जाधव (पीडब्लू-13, पीड़ित-1 के पिता) के घर पर बेघर लोगों (बेघर बस्ती) के एक इलाके में। याचिकाकर्ता अपने परिवार के साथ बगल के घर में रहता था। आई. डी. 1 को शाम करीब 6 बजे याचिकाकर्ता अपनी बेटी रेशमा (पी. डब्ल्यू.-8) के साथ सुनील (पी. डब्ल्यू.-6) द्वारा संचालित किराने की दुकान पर गया था, जहाँ वह दो मृत लड़कियों से मिला और मिठाई देने के बहाने वह लड़कियों को अपने साथ ले गया।

इसके बाद, उसने दोनों लड़कियों के साथ बलात्कार और हत्या कर दी, और पीड़ित-2 के शव को सखाराम के पिता के खेत में स्थित एक कुएं में फेंक दिया।

भीकू यादव (पीडब्लू-11), और पीड़ित के शरीर-1 को "कलकाचे बेट" (वह स्थान जहाँ बांस के पेड़ और झाड़ियाँ एक साथ बढ़ती हैं) में छिपा दिया।

19] 6 एस सी आर।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

5. याचिकाकर्ता को अगले दिन ग्रामीणों ने पकड़ लिया, यानी 14.12.1999, जिसके सामने उसने पीड़ित की हत्या के बारे में एक अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति दी-2। उसी दिन, उन्होंने मृतक के शवों की बरामदगी के साथ-साथ शवों की खोज के लिए भी पुलिस का नेतृत्व किया। बलात्कार का स्थान, जहाँ से खून से सना मिट्टी और पौधे, आधी जली हुई बीड़ी और टूटी हुई चूड़ियाँ बरामद की गईं। गिरफ्तारी के समय याचिकाकर्ता द्वारा पहने गए खून से सने कपड़े भी जब्त कर लिए गए। मृतक के कपड़े उसके कहने पर बरामद किए गए।

25.12.1999 . मृतक के दादा के भाई पी. डब्ल्यू. 10 जयसिंह दिनकर जाधव ने प्राथमिकी दर्ज कराई।

6. 2000 के सत्र मामला संख्या 142 में विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ता को 'अंतिम' के आधार पर ऊपर बताए गए अपराधों के लिए दोषी ठहराया।

दो मृतक के बलात्कार के स्थान का पता चला जहां से खून से सना मिट्टी और अन्य आपत्तिजनक सामान जब्त किए गए थे; याचिकाकर्ता का अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति; उसके कहने पर धोखाधड़ी की बरामदगी; और याचिकाकर्ता द्वारा दिया गया गलत स्पष्टीकरण। ट्रायल कोर्ट ने पाया कि इन सभी परिस्थितियों ने एक पूरी श्रृंखला बनाई याचिकाकर्ता के अपराध के लिए।

7. उच्च न्यायालय ने 2001 की आपराधिक अपील संख्या 652 और 2001 की पुष्टि मामले संख्या 3 में, कथित अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति को छोड़कर उपरोक्त सभी परिस्थितियों पर भरोसा करते हुए, मृत्यु की सजा सहित, निचली अदालत द्वारा दिए गए दोषसिद्धि और सजा की पुष्टि की। यह न्यायालय, अपील में, 2007 की आपराधिक अपील संख्या 680 होने के नाते, इसकी पुष्टि करते हुए यह अभिनिर्धारित करता है कि यह मामला दुर्लभतम मामलों की श्रेणी में आता है जिसमें मृत्युदंड की आवश्यकता होती है। समीक्षा याचिका (सी. आर. एल.) इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णय और आदेश के खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा दायर 2008 की संख्या 301 को उन्हीं तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिनांक 1 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था, जिसने अपील में निर्णय दिया था, जिन्होंने मामले पर विचार करने के बाद कहा था कि याचिका में कोई योग्यता नहीं थी।

8. एक आपराधिक विविध याचिका सी. आर. एल. है। 2015 का एम. पी. सं. 5584 याचिकाकर्ता द्वारा इस समीक्षा याचिका को फिर से खोलने के लिए दायर किया गया था, जिसमें डब्ल्यू. पी. में इस न्यायालय के दिनांक 02.09.2014 के निर्णय पर भरोसा किया गया था।

(सीआरएल.) मोहम्मद में 2014 का सं. 77। आरिफ @अशफाक बनाम। पंजीयक, भारत का सर्वोच्च न्यायालय, (2014) 9 एस. सी. सी. 737, जिसने अभिनिर्धारित किया कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के आलोक में, मृत्युदंड के मामलों में पुनरीक्षण याचिकाओं की सुनवाई तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा मौखिक रूप से की जानी आवश्यक थी, और विशेष रूप से उन सभी मामलों में पुनरीक्षण याचिकाओं को फिर से खोलने की अनुमति दी, जहां पुनरीक्षण याचिकाओं को प्रचलन द्वारा खारिज कर दिया गया था। 9. उपरोक्त निर्णय के आलोक में, इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता द्वारा मौखिक रूप से दायर समीक्षा याचिका पर खुली अदालत में सुनवाई की है।

10. हालाँकि, याचिकाकर्ता की विद्वान वकील सुश्री नित्या रामकृष्णन ने मामले के गुण-दोष के बारे में कोई तर्क नहीं दिया।

केवल निम्नलिखित दो तर्क उठाए गएः - सबसे पहले, कि विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) (संक्षेप में, "सी. आर. पी. सी".) का सीधा उल्लंघन करते हुए, सजा सुनाते समय याचिकाकर्ता को एक अलग सुनवाई नहीं दी थी, जो सजा सुनाने से पहले सुनवाई के अधिकार का प्रावधान करता है जैसा कि इस न्यायालय द्वारा बचन सिंह बनाम में पुष्टि की गई है। पंजाब राज्य, (1980) 2 एस. सी. सी. 684 और कई अन्य निर्णय; और दूसरा, कि याचिकाकर्ता को मौत की सजा का फैसला शत्रुघ्न चौहान बनाम मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले के अनुपात के विपरीत है। भारत संघ, (2014) 3 एस. सी. सी. 1 ने इस न्यायालय के चार न्यायाधीशों की पीठ के फैसले में अनुसरण किया। राज्य (एन. सी. टी. दिल्ली), (2014) 7 एस. सी. सी. 264, जिसमें कहा गया था कि मानसिक बीमारी या पागलपन से पीड़ित व्यक्तियों की फांसी भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन करती है और ऐसी मानसिक बीमारी या पागलपन एक पर्यवेक्षण होगा।

मृत्युदंड को आजीवन कारावास में परिवर्तित करने योग्य परिस्थिति।

11. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी के विद्वान वकील, अर्थात महाराष्ट्र राज्य, श्री निशांत रमाकांतराव कटनेश्वरकर ने इस बात पर प्रकाश डाला कि सजा सुनाने से पहले की सुनवाई की परिकल्पना निम्नानुसार की गई है -

Cr.P.C की धारा 235 (2) को एक अलग तिथि पर संचालित करने की आवश्यकता नहीं है, और निचली अदालत द्वारा दी गई सजा दूषित नहीं होती है।

केवल इसलिए कि सुनवाई के संबंध में सजा एक अलग तारीख पर नहीं दी गई थी। उस उद्देश्य के लिए, वकील ने वसंत संपत डुपारे बनाम मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले पर भरोसा किया। की स्थिति महाराष्ट्र, (2017) 6 एससीसी 631। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता किसी भी मानसिक बीमारी से पीड़ित नहीं है ताकि मौत की सजा को कम किया जा सके, और उस प्रभाव के लिए कुछ चिकित्सा रिपोर्ट प्रस्तुत की।

12. इस याचिका पर सुनवाई करते हुए, इस न्यायालय की राय थी कि [2019] 6 एस. सी. आर. के आदेश के खिलाफ याचिकाकर्ता की दलीलों में कोई योग्यता नहीं थी।

दूसरा मुद्दा 'अभियुक्त एक्स' की मानसिक बीमारी से संबंधित है, जिसे इस अदालत के पहले दौर के फैसले के बाद इस समीक्षा याचिका में पहली बार उठाया गया था। 14. पहले मुद्दे पर, याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वकील ने तर्क दिया कि इस तथ्य पर विचार करते हुए कि पूर्व के प्रक्रियात्मक अधिकार

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) के तहत परिकल्पित सजा की सुनवाई, आरोपी को कभी भी प्रदान नहीं की गई थी, इसने सजा के पहलू पर निचली अदालत के समक्ष एक नई सुनवाई को अनिवार्य कर दिया। हमारे समक्ष तत्काल मामले में, याचिकाकर्ता के वकील द्वारा प्रस्तुत मुख्य तर्क यह था कि, क्योंकि दोषसिद्धि का क्रम और वर्तमान में सजा का क्रम मामला उसी दिन पारित किया गया था, याचिकाकर्ता को उस पर लगाए गए दंड के संबंध में कोई अवसर नहीं दिया गया था। इसलिए, वकील ने तर्क दिया कि वर्तमान मामले में पारित सजा का आदेश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) का उल्लंघन है, जो पूरी सजा को दूषित करने वाली अवैधता है। वकील ने जोरदार तर्क दिया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) के समग्र अध्ययन से संकेत मिलता है कि अभियुक्त को अपने पक्ष में सामग्री प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर दिया जाना चाहिए ताकि कम करने वाली परिस्थितियों को रिकॉर्ड पर रखा जा सके जो कम जुर्माना लगाने को अनिवार्य करती हैं।

15. इस समय यह ध्यान रखना उचित है कि सामान्य कानून परंपरा का पालन करने वाले देशों, ऐतिहासिक रूप से अभियोजन ने कोई भूमिका नहीं निभाई।

सजा सुनाने की प्रक्रिया में और यह कि यह ज्यादातर न्यायाधीश को तय करने के लिए छोड़ दिया गया था। भारत में, पुरानी संहिता के तहत, कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया था, पोस्ट अभियुक्त के लिए अदालत के समक्ष प्रासंगिक तथ्यों को रखने के लिए दोषसिद्धि। 1973 में वर्तमान संहिता की शुरुआत के बाद ही इस तरह की सुनवाई का प्रावधान आधुनिक दंडात्मक नियमों के अनुसार किया गया था

अभ्यास। इस स्तर पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 को उद्धृत करना आवश्यक हो सकता है, जो अन्य बातों के अलावा सजा-पूर्व सुनवाई का प्रावधान करती है।

235. दोषमुक्त या दोषसिद्धि का निर्णय।

(2) यदि अभियुक्त को दोषी ठहराया जाता है, तो न्यायाधीश, जब तक कि वह धारा 360 के प्रावधानों के अनुसार आगे नहीं बढ़ता है, तब तक अभियुक्त ए. सी. सी. यू. एस. डी. 'एक्स' वी. की सुनवाई करेगा।

सजा के सवाल पर, और फिर उसे कानून के अनुसार सजा दें।

सी. आर. पी. सी. की धारा 235 (2) का तात्पर्य है कि एक बार दोषसिद्धि का निर्णय सुनाए जाने के बाद, न्यायालय अभियुक्त को सजा के प्रश्न पर सुनेगा और उस स्तर पर, अभियुक्त के लिए ऐसी सामग्री को रिकॉर्ड पर पेश करने के लिए खुला है जो उसके पक्ष में कम करने वाली परिस्थितियों को दिखाने के लिए उपलब्ध है। दूसरे शब्दों में, इस स्तर पर अभियुक्त अधिरोपण के लिए तर्क देता है

ऐसी कम करने वाली परिस्थितियों के आधार पर कम सजा, जो उसके द्वारा न्यायालय के ध्यान में लाई गई हो।

16. सी. आर. पी. सी. की धारा 235 (2) अभियुक्त के लिए सजा-पूर्व सुनवाई को अनिवार्य करती है और एक प्रमुख सिद्धांत को आत्मसात करती है कि सजा होनी चाहिए

18. इस बिंदु पर पहला मामला सांता सिंह बनाम है। पंजाब राज्य, (1976) 4 एस. सी. सी. 190, जिसका निर्णय न्यायमूर्ति भगवती (उस समय उनके स्वामी के रूप में) और न्यायमूर्ति फजल अली की अध्यक्षता में इस न्यायालय की एक खंड पीठ ने किया था। यह मामला इस तथ्य पर घूमता है कि दोहरे हत्या के मामले में एक आरोपी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) के तहत 'सुनवाई' का अवसर प्रदान किए बिना मौत की सजा सुनाई गई थी, जो सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील का एकमात्र आधार था। इस अदालत ने, दो समवर्ती रायों से, 'सुनवाई' का अवसर देने के बाद सजा पर नए सिरे से विचार करने के लिए मामले को निचली अदालत में वापस भेज दिया। अभियुक्त को। न्यायमूर्ति भगवती ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) की व्याख्या निम्नलिखित तरीके से कीः

" इस सामग्री को हलफनामे के माध्यम से अदालत के समक्ष रखा जा सकता है, लेकिन अगर कोई भी पक्ष शुद्धता या सत्यता [2019] पर विवाद करता है तो एस. सी. आर.

दूसरे द्वारा उत्पादित की जाने वाली सामग्री का, एक अवसर साक्ष्य देने के लिए संबंधित पक्ष को देना होगा

ऐसी सामग्री को अभिलेख पर लाने के उद्देश्य से। सुनवाई

सजा के प्रश्न पर, से रहित प्रस्तुत किया जाएगा

सभी अर्थ और सामग्री और यह एक बेकार हो जाएगा

यदि आवश्यक हो, तो ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करने के उद्देश्य से न्यायालय के समक्ष सामग्री।

.....

इसलिए हमारा विचार है कि सुनवाई पर विचार किया गया है।

धारा 235 (2) द्वारा केवल मौखिक सुनवाई तक सीमित नहीं है।

प्रस्तुतियाँ, लेकिन इसका उद्देश्य भी एक अवसर देना है

अभियोजन पक्ष और अभियुक्त को अदालत के सामने तथ्यों को रखना और प्रश्न पर असर डालने वाले विभिन्न कारकों से संबंधित सामग्री

सजा और यदि वे दोनों पक्षों द्वारा लड़े जाते हैं, तो उत्पन्न करने के लिए

उसी को स्थापित करने के उद्देश्य से साक्ष्य। बेशक,

यह देखने के लिए अदालत को ध्यान रखना होगा कि

सजा के सवाल पर सुनवाई का दुरुपयोग और मोड़ नहीं किया जाता है कार्यवाहियों को अनावश्यक रूप से आगे बढ़ाने के लिए एक साधन में। 99 ”

(जोर दिया गया)

न्यायमूर्ति फजल अली, उपरोक्त निष्कर्ष से सहमत हुए और कहा

एक ही लाइनों के साथ वैशन।

19. उपरोक्त निर्णय पर दगडू में सवाल उठाया गया और

एस वी। महाराष्ट्र राज्य (1977) 3 एस. सी. सी. 68, जिसमें एक समान

आयन इस न्यायालय के समक्ष आए। इस न्यायालय ने अभियुक्त की ओर से पेश किए गए वकील को खारिज करते हुए तर्क दिया कि 1 सिंह मामले (उपरोक्त) में अनुपात ने मामले की अनिवार्य रिमांड को अनिवार्य कर दिया है -

न्यायालय, निम्नानुसार आयोजित किया गया

अदालत, जो एक आरोपी को दोषी ठहराती है, उसे सुनती है सजा के सवाल के लिए अनिवार्य रूप से रिमांड की आवश्यकता होनी चाहिए

उस न्यायालय ने अभियुक्त को एक अवसर प्रदान करने के लिए 'X' v को स्वीकार किया।

को। सजा के सवाल पर सुना जाए। न्यायालय ने

एक अभियुक्त को दोषी ठहराते हुए, निर्विवाद रूप से उसे सुनना चाहिए

वाक्य का प्रश्न। लेकिन अगर, किसी भी कारण से, यह ऐसा करने से चूक जाता है और

अभियुक्त उच्च न्यायालय में इसकी शिकायत करता है, वह

उस न्यायालय के लिए सुनवाई करके उल्लंघन को सुधारने के लिए खुला रहें सजा के प्रश्न पर अभियुक्त। यह मौका मिलना चाहिए

वास्तविक और प्रभावी होना चाहिए, जिसका अर्थ है कि अभियुक्त को होना चाहिए

न्यायालय के समक्ष उन सभी आंकड़ों को प्रस्तुत करने की अनुमति जो वह चाहता है

वाक्य के प्रश्न को प्रस्तुत करना। अभियुक्त व्यायाम कर सकता है।

वह अधिकार या तो अपने वकील को मौखिक प्रस्तुतियाँ करने का निर्देश देकर न्यायालय को या वह, शपथ पत्र पर या अन्यथा, लिखित रूप में दे सकता है

न्यायालय के समक्ष वह जो कुछ भी रखना चाहता है

अभियुक्त को देने के लिए मामले को स्थगित करना पड़ता है आवश्यक डेटा का उत्पादन करने और बनाने के लिए पर्याप्त समय

सजा के सवाल पर उनकी दलीलें। कि शायद,

अनिवार्य रूप से होना चाहिए जहां दोषसिद्धि दर्ज की जाती है

जे. भगवती ने अपने निर्णय में कहा है कि सावधानी बरतनी चाहिए। यह सुनिश्चित करने के लिए लिया गया कि प्रश्न पर सुनवाई का अवसर

सजा का दुरुपयोग नहीं किया जाता है और अनुचित कार्य के लिए एक साधन में बदल दिया जाता है

कार्यवाही को आगे बढ़ाना "।

(जोर दिया गया)

20. राजेन्द्र प्रसाद बनाम। उत्तर प्रदेश राज्य, ए. आई. आर 1979

एस. सी. 916, उच्चतम न्यायालय ने अपनी चिंता व्यक्त की कि अनिवार्य

सजा-पूर्व सुनवाई मामले के तथ्यों की पुनरावृत्ति के अलावा और कुछ नहीं थी। पीठ ने उम्मीद जताई कि "बार सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए नए प्रावधान के संसाधनों का पूरी तरह से उपयोग करने में पीठ की सहायता करेगा।

व्यक्तिगत न्याय, सजा पर प्रस्तुतियों को केवल सबूत के लिए रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री के संदर्भ में अनुष्ठान करने के बजाय या

अपराध का खंडन "।

21. मुनियप्पन बनाम के मामले में। तमिलनाडु राज्य, (1981) 3

एस. सी. सी. 11, सुप्रीम कोर्ट ने नोट किया कि ट्रायल कोर्ट ने सजा सुनाई थी अभियुक्त को यह कहते हुए मौत के घाट उतार दिया कि जब अभियुक्त को बोलने के लिए कहा गया था

सजा के सवाल पर उन्होंने कुछ नहीं कहा। ऐसे मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि धारा 235 (2) की आवश्यकता नहीं थी

अभियुक्त और [2019] 6 एस. सी. आर. से केवल एक औपचारिक प्रश्न पूछकर उसे आरोपमुक्त कर दिया गया।

न्यायालय को वास्तविक प्रयास करने चाहिए। न्यायालय ने उसमें कहा कि "यह न्यायाधीश का बाध्यकारी कर्तव्य है कि वह न्यायालय की औपचारिकताओं को दरकिनार करे और सजा के प्रश्न को व्यापक, सामाजिक दृष्टिकोण से देखे।"

22. अदालत ने अलाउद्दीन मियां बनाम मामले में सजा-पूर्व सुनवाई के लिए पर्याप्त समय प्रदान करने के सवाल पर विचार किया था। की स्थिति

बिहार, (1989) 3 एससीसी 5. उच्चतम न्यायालय ने कहा कि निचली अदालत ने आरोपी को सजा सुनाने के लिए पर्याप्त समय नहीं दिया था। प्रासंगिक कारक, जैसे कि अभियुक्त की पृष्ठभूमि, उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति और समुदाय पर उनके अपराध का प्रभाव रिकॉर्ड पर नहीं आया था, और ऐसी जानकारी के अभाव में सजा पर निर्णय लेना मुश्किल था। इसलिए उच्चतम न्यायालय ने सिफारिश की कि "एक सामान्य नियम के रूप में निचली अदालतों को दोषसिद्धि दर्ज करने के बाद मामले को भविष्य की तारीख तक के लिए स्थगित कर देना चाहिए और अभियोजन पक्ष के साथ-साथ बचाव पक्ष दोनों को प्रासंगिक सामग्री प्रस्तुत करने के लिए कहना चाहिए।

उसके समक्ष सजा के प्रश्न को ध्यान में रखते हुए और उसके बाद अपराधी को दी जाने वाली सजा का उच्चारण करें। उपरोक्त

प्रस्ताव को मल्कियत सिंह बनाम में भी दोहराया गया था। पंजाब राज्य (1991) 4 एस. सी. सी. 341। 23. दूसरी ओर, सेवका पेरुमल बनाम। तमिलनाडु राज्य, ए. आई. आर. 1991 एस. सी. 1463, इस न्यायालय ने मौत की सजा को बरकरार रखा, भले ही यह तर्क दिया गया था कि निचली अदालत द्वारा सजा सुनाने के आधार को उठाने के लिए कोई समय नहीं दिया गया था। इस न्यायालय ने कहा कि अपील के दौरान बचाव पक्ष के वकील कोई अतिरिक्त आधार प्रदान करने में असमर्थ रहे थे

सजा पर और इसलिए अभियुक्त के लिए कोई पूर्वाग्रह पैदा नहीं किया गया था। 24. महाराष्ट्र राज्य में v. सुखदेव सिंह, (1992) 3 एस. सी. सी. 700, उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि जबकि सी. आर. पी. सी. की धारा 309

सजा सुनाने की सुनवाई को स्थगित करने के लिए कोई शक्ति निर्धारित नहीं की गई है, इन्हें

जहां अभियुक्त ने पूंजीगत मामलों में सामग्री प्रस्तुत करने की मांग की हो, वहां प्रावधान किया जाए। जय कुमार बनाम। मध्य प्रदेश राज्य, ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 1860, इस न्यायालय ने कहा कि निचली अदालत ने एक अवसर दिया था

सामग्री का उत्पादन करने के लिए रक्षा, जिसे उन्होंने नहीं करने के लिए चुना था, और उनके द्वारा उठाई गई कम करने वाली परिस्थितियों पर विचार किया था। इस न्यायालय ने राय दी कि ऐसी परिस्थितियों में, यह न्याय की विफलता नहीं थी कि न्यायाधीश ने सुनवाई स्थगित नहीं की।

25. अनशद वी. कर्नाटक राज्य, (1994) 4 एस. सी. सी. 381, इस न्यायालय ने अस्वीकृत रूप से उल्लेख किया कि विचारण न्यायाधीश ने ए. सी. सी. यू. एस. ई. डी. 'एक्स' वी. की सजा पर विचार किया था।

गुप्त रूप से एक पैराग्राफ में और इसने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) के उद्देश्य को पराजित कर दिया, जिससे "सजा के प्रश्न से निपटने के दौरान उनकी ओर से संवेदनशीलता की कमी" उजागर हुई। अपीलार्थियों की सजा को कम करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि दोनों निचली अदालतें उकसाने वाली और कम करने वाली परिस्थितियों की सराहना नहीं करती हैं और इसलिए सजा देने के लिए उनका पूरा दृष्टिकोण गलत था।

26. उपरोक्त सिद्धांत के मामले में आगे स्पष्ट किया गया था

बी. ए. उमेश बनाम महापंजीयक, कर्नाटक उच्च न्यायालय, (2017) 4 एस. सी. सी. 124, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि समीक्षा याचिका की अनुमति केवल इसलिए नहीं दी जा सकती क्योंकि सजा पर सुनवाई के लिए कोई अलग तारीख नहीं दी गई थी। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) अलग से आदेश नहीं देती है

सजा की सुनवाई की तारीख, बल्कि, यह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर है, उदाहरण के लिए, यदि पक्षकार अलग-अलग तारीखों पर सुनवाई करने का आग्रह करते हैं।

27. मुकेश बनाम में दिनांकित 03.02.2017 आदेश के अनुसार। राज्य (एन. सी. टी.

दिल्ली), (2017) 3 एस. सी. सी. 717, इस न्यायालय ने यह पाते हुए कि न्यायालय द्वारा सी. आर. पी. सी. की धारा 235 (2) का कोई अनुपालन नहीं किया गया था, निम्नानुसार देखा गयाः

" सभी अधिकारियों पर विचार करने के बाद, हम पाते हैं कि वहाँ दो तरीके हैं, एक है मामले को रिमांड पर लेना या निर्देश देना

अभियुक्त व्यक्तियों को आवश्यक डेटा और अग्रिम प्रस्तुत करने के लिए

सजा के प्रश्न पर विवाद। माना जा रहा है

मामले की प्रकृति के लिए, हम इसे उचित समझते हैं दूसरा तरीका अपनाएँ। विस्तार से, हम देना चाहेंगे

अभियुक्त व्यक्तियों को सुनवाई के समापन से पहले अवसर

शमन के बारे में बताते हुए दस्तावेजों के साथ शपथ पत्र दाखिल करना

परिस्थितियाँ। कहने की जरूरत नहीं है कि उक्त उद्देश्य के लिए यह आवश्यक है।

कि विद्वान वकील, श्री एम. एल. शर्मा और उनकी सहयोगी सुश्री सुमन और श्री ए. पी. सिंह और उनके सहयोगी श्री वी. पी. सिंह को

जेल जाने और अभियुक्त के साथ संवाद करने की अनुमति दी जाए व्यक्ति और आवश्यक शपथ पत्र और सामग्री दाखिल करें।

(जोर दिया गया)

28. मुकेश बनाम के अंतिम क्रम में। राज्य (दिल्ली का राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र), (2017)

6 एस. सी. सी. 1, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यदि सी. आर. पी. सी. की धारा 235 (2) के तहत प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया जाता है, तो अपीलीय न्यायालय कर सकता है या तो मामले को निचली अदालत में वापस भेज दें या मामले को [2019] 6 एस. सी. आर. से पहले स्थगित कर दें।

साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर देने के बाद सजा पर सुनवाई के लिए अपीलीय मंच। दूसरी ओर, अदालत ने यह भी कहा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) के गैर-अनुपालन में किसी भी कमी को अपीलीय स्तर पर ही अवसर प्रदान करके ठीक किया जा सकता है ताकि कार्यवाही में देरी को कम किया जा सके। उस मामले में, इस अदालत ने अभियुक्त को कम करने वाली परिस्थितियों को सूचीबद्ध करते हुए एक हलफनामा दायर करने की अनुमति दी थी, यह देखते हुए कि सजा पर कोई पूर्व सुनवाई कभी नहीं की गई थी।

29. इस पहलू पर इस न्यायालय के हाल के दो तीन न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय हमारे विचार के योग्य हैं। सबसे पहले, दिनांकित 28.11.2018 निर्णय में छन्नू लाल वर्मा बनाम। छत्तीसगढ़ राज्य (आपराधिक अपील सं। 1482-1483 2018), इस न्यायालय ने कहा कि मुकदमे के चरण में अलग से सुनवाई नहीं होना एक प्रक्रियात्मक अनुचितता थी। यह देखते हुए कि दोषसिद्धि और सजा के लिए एक द्विभाजित सुनवाई एक आवश्यक शर्त थी

संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार, (2009) 6 एस. सी. सी. 498 वाले मामले में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उसी दिन सजा सुनाने के लिए सुनवाई करके, विचारण न्यायालय अपीलार्थी को सजा और शमन के लिए प्रासंगिक साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक समय प्रदान करने में विफल रहा। हम.

यह पाते हुए कि इसका यह अर्थ नहीं लिया जा सकता है कि यह न्यायालय विधि के एक प्रस्ताव के रूप में यह निर्धारित करना चाहता है कि दोषी ठहराए जाने के दिन ही अभियुक्त को सजा सुनाने के लिए सुनवाई करने से मुकदमा दूषित हो जाएगा। इसके विपरीत, उक्त मामले में, तथ्यों पर यह पाया गया कि यह एक प्रक्रियात्मक अनुचितता थी क्योंकि अभियुक्त को सजा और शमन के लिए प्रासंगिक साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त समय नहीं दिया गया था।

30. दूसरा, राजेंद्र प्रहलादराव वासनिक बनाम में दिनांकित 12.12.2018 निर्णय में। महाराष्ट्र राज्य, (समीक्षा याचिका (सीआरएल)) नं. 306-307 2013), इस न्यायालय ने एक सामान्य टिप्पणी की कि जिन मामलों में मृत्युदंड दिया जा सकता है, वहां विचारण न्यायालय को दोषी ठहराए जाने के बाद अभियुक्त को एक अवसर देना चाहिए जो मृत्युदंड की औचित्य के प्रश्न पर प्रासंगिक सामग्री पेश करने के लिए पर्याप्त है। यह स्पष्ट रूप से प्रकृति में सबसे अच्छी निर्देशिका है और इसका मतलब यह नहीं लिया जा सकता है कि एक अलग तारीख पर सजा-पूर्व सुनवाई अनिवार्य है।

31. यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि मलकियत सिंह मामले (ऊपर) में इस अदालत के पुराने तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले में, अदालत ने कहा कि अलाउद्दीन मियां मामले में दो न्यायाधीशों की पीठ के फैसलों को ध्यान में रखते हुए। मामला (ऊपर) और अंगुस्वामी बनाम। तमिलनाडु राज्य, (1989) 3 एस. सी. सी. 33, जिसमें यह निर्धारित किया गया था कि अपराध के निष्कर्ष के रूप में उसी दिन दी गई सजा कानून के अनुसार नहीं है, सामान्य ए. सी. सी. यू. एस. डी. 'एक्स' वी।

ऐसी प्रक्रिया के उल्लंघन के मामले में कार्रवाई आगे के साक्ष्य के लिए रिमांड होगी। हालाँकि, इन दो निर्णयों के अवलोकन पर हम पाते हैं कि उनके महत्व को मल्कियत सिंह मामले (ऊपर) में सही ढंग से सराहा नहीं गया है, क्योंकि अलाउद्दीन मियां मामले (ऊपर) में टिप्पणियों, जैसा कि अंगुस्वामी मामले (ऊपर) में भरोसा किया गया है, के संचालन के संबंध में

अलग-अलग तारीखों पर सुनवाई केवल निर्देशिका थी। हालाँकि, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि इस न्यायालय द्वारा वसंत संपत डुपारे मामले (उपरोक्त) में मल्कियत सिंह मामले (उपरोक्त) के प्रभाव पर पहले ही विचार किया जा चुका है, जिसमें यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि यदि अभियुक्त को प्रासंगिक सामग्री को रिकॉर्ड पर रखने के लिए पर्याप्त समय दिया गया है तो केवल एक अलग तिथि पर सजा पूर्व सुनवाई का संचालन न करने से मुकदमा स्वयं दूषित नहीं होगा।

32. यह ध्यान देना संदर्भ से बाहर नहीं हो सकता है कि यदि अभियुक्त को न्यूनतम सजा देने का प्रस्ताव किया जाता है, तो

धारा 235 (2) के तहत अवसर प्रदान करना उत्पन्न नहीं होगा। (देखें तरलोक सिंह बनाम। पंजाब राज्य, (1977) 3 एस. सी. सी. 218; रामदेव चौहान बनाम। असम राज्य (2001) 5 एस. सी. सी. 714)।

33. इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि सजा पर सुनवाई के स्तर पर, आम तौर पर, आरोपी कम करने के आधार पर तर्क देता है।

कम सजा देने के लिए परिस्थितियाँ उसके पक्ष में थीं। दूसरी ओर, राज्य/शिकायतकर्ता उच्च सजा के अधिरोपण से संबंधित विवाद का समर्थन करने के लिए अभियुक्त के खिलाफ गंभीर परिस्थितियों के आधार पर बहस करेगा। Cr.P.C की धारा 235 (2) का उद्देश्य अभियुक्त को परिस्थितियों को कम करने का अवसर प्रदान करना है। हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि निचली अदालत सजा पर पक्षकारों को सुनने के लिए मामले को एक या दो दिनों के लिए स्थगित करके ही आई. डी. 1 की धारा 235 (2) की आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है। यदि अभियुक्त उसी दिन इस पहलू पर अपनी दलीलें प्रस्तुत करने के लिए तैयार है।

दोषसिद्धि के निर्णय की घोषणा के लिए, निचली अदालत के लिए दोषसिद्धि का निर्णय पारित करने के बाद उसी दिन सजा पर पक्षों को सुनना खुला है। किसी मामले में, तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, विचारण न्यायालय अगले दिन या दो दिनों के बाद भी पक्षों को सुनने का विकल्प चुन सकता है।

34. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हमारी राय है कि जब तक धारा 235 (2) की भावना और उद्देश्य पूरा होता है, जब तक कि अभियुक्त को अपना मामला चलाने का वास्तविक और प्रभावी अवसर प्रदान किया जाता है।

सजा सुनाने के संबंध में, चाहे केवल मौखिक प्रस्तुतियों के माध्यम से या रिकॉर्ड पर प्रासंगिक सामग्री लाने के माध्यम से, [2019] 6 एस. सी. आर. पर कोई रोक नहीं है।

सजा सुनाने से पहले की सुनवाई उसी दिन हो रही है जिस दिन दोषसिद्धि से पहले की सुनवाई होती है। तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, एक अलग तारीख सजा पर सुनवाई के लिए आवश्यक हो सकता है, लेकिन यदि पक्षकार ऐसा करना चाहते हैं तो उसी दिन सजा के प्रश्न पर बहस करने की समान रूप से अनुमति है।

35. अब हमें गैर-अनुपालन के प्रभाव पर विचार करने की आवश्यकता है

निचली अदालत द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) के तहत प्रदान की गई प्रक्रिया। यह मानते हुए भी कि निचली अदालत द्वारा सजा पर सुनवाई के सवाल पर कुछ हद तक प्रक्रियात्मक अनियमितता की गई है, अपील अदालत द्वारा सजा पर सुनवाई का पर्याप्त अवसर प्रदान करके उल्लंघन को दूर किया जा सकता है। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि सी. आर. पी. सी. की धारा 465 में आदेश दिया गया है कि सक्षम अधिकार क्षेत्र के न्यायालय द्वारा पारित किसी भी निष्कर्ष, सजा या आदेश को सुनवाई से पहले या उसके दौरान आदेश, निर्णय और अन्य कार्यवाही में किसी भी त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण अपील न्यायालय द्वारा उलट या बदला नहीं जाएगा, जब तक कि ऐसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता न हो। इस तरह के गैर-अनुपालन को अपीलीय न्यायालय द्वारा या तो उचित मामलों में मामले को रिमांड करके या स्वयं आरोपी को एक प्रभावी अवसर देकर ठीक किया जा सकता है।

36. इस पहलू पर कई मामलों द्वारा प्रदान की गई कथा

दो महत्वपूर्ण अधिकारों को संतुलित करने की कोशिश कर रहे अपीलीय न्यायालय की एक तस्वीर को चित्रित करता है। , निष्पक्ष सुनवाई और त्वरित सुनवाई का अधिकार। एक तरफ, अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) के तहत प्रक्रियात्मक अधिकार दिया गया है, और दूसरी तरफ मुकदमे में देरी करने के लिए दुरुपयोग की संभावना है। भारत में अनुभवी न्यायाधीशों के पास अभियुक्तों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए वास्तविक कारणों से मुकदमे को आगे बढ़ाने की योजनाओं के बीच अंतर करने के लिए पर्याप्त विशेषज्ञता है। 37. यह हमें अपनी आपराधिक न्याय प्रणाली के तहत अपीलीय अदालतों की भूमिका के बारे में बताता है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि हमारी चुनी हुई प्रणाली के तहत, कि

निचली अदालतों को उच्चतम विवेकाधिकार प्रदान किया जाता है। कभी-कभी अपीलीय अदालतें, खेल में प्रतिस्पर्धी कारकों को संरक्षित करने के लिए, निचली अदालत को संचालित करने के लिए विवेकाधिकार प्रदान करती हैं। हालाँकि, अपीलीय न्यायालय को इस तरह की छूट प्रदान करते समय एक 'सावधानीपूर्ण दृष्टिकोण' अपनाना चाहिए, जिसे प्रतिस्पर्धी हितों के खिलाफ प्रतिबंधित और संतुलित किया जाना चाहिए। 1 विभिन्न अदालती आदेशों का वर्णन, जो ऊपर उद्धृत किए गए हैं, एक

सांता सिंह मामले के बाद से ही चेतावनी की कहानी, की पसंद के रूप में 1 डेम सियान एलियास, आपराधिक न्याय में निष्पक्षता (सुनहरे धागे और व्यावहारिक पैच), हैमलिन व्याख्यान (2018)

सी. आर. पी. सी. की धारा 235 (2) का अनुपालन न करने के निवारण के लिए

कम से कम दो अलग-अलग तरीकों के चयन के लिए।

38. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, कई मामलों में दोनों के बीच चयन के सवाल से जूझना पड़ा है। इस न्यायालय के दृष्टिकोण को ऊपर दिए गए सावधानीपूर्ण दृष्टिकोण के आलोक में राष्ट्रीयकृत और समझने की आवश्यकता है। उपरोक्त चर्चा से निम्नलिखित उक्ति सामने आती है

कि धारा 235 (2) के तहत होने वाली 'सुनवाई' शब्द

आई.

अभियुक्त और अभियोजन पक्ष को उनके विकल्प पर,

एक सार्थक अवसर दिया गया। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) के तहत सार्थक सुनवाई

ii.

सामान्य पाठ्यक्रम, उसी के लिए दिए गए समय या दिनों की संख्या पर सशर्त नहीं है। इसे गुणात्मक रूप से मापा जाना है और

मात्रात्मक रूप से नहीं।

निचली अदालत को धारा के अधिदेश का पालन करने की आवश्यकता है

iii.

235 (2) सर्वोत्तम प्रयासों के साथ सीआरपीसी।

iv.

गैर-अनुपालन को अपीलीय चरण में ठीक किया जा सकता है

खैर, सार्थक अवसर प्रदान करके।

यदि ऐसा अवसर विचारण न्यायालय द्वारा प्रदान नहीं किया जाता है, तो

वी.

अपीलीय न्यायालय को विभिन्न विचारों को संतुलित करने की आवश्यकता है और या तो अपने सामने एक अवसर प्रदान करने की आवश्यकता है या नए सिरे से विचार के लिए उचित मामले में निचली अदालत को वापस भेजने की आवश्यकता है।

तथापि, अभियुक्त को अपीलीय न्यायालयों को संतुष्ट करने की आवश्यकता है,

vi.

अन्य बातों के साथ-साथ कम करने वाली परिस्थितियों के अस्तित्व के आधार पर अनुरोध करके, इसके आगे के विचार के लिए।

कुछ कठोर वास्तविकताओं के बारे में जागरूक होना जैसे कि लंबे समय तक

vii.

अपीलीय न्यायालय, उपयुक्त मामलों में, न्यायालय द्वारा आदेशित प्रासंगिक तथ्यों पर स्वतंत्र जांच का सहारा ले सकता है। स्वयं।

यदि अभियुक्त द्वारा ऐसा कोई आधार नहीं लाया जाता है

viii.

अपीलीय अदालतें, तो यह सहारा लेने के लिए बाध्य नहीं है

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) के तहत।

39. सजा-पूर्व सुनवाई पर कानून पर चर्चा करने के बाद, यह होगा

इस समय न्यायालयों के निर्णयों पर पुनर्विचार करने के लिए,

यह पता लगाने के लिए कि क्या याचिकाकर्ता [2019] 6 एस. सी. आर. था।

इस तत्काल मामले में सजा की मात्रा के लिए प्रासंगिक सामग्री को रिकॉर्ड पर रखने का एक प्रभावी अवसर दिया गया है।

40. विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ता को सजा अधिरोपित करने के पहलू पर अलग से सुना, जो अनुच्छेद 79-87 से काफी स्पष्ट है।

विचारण न्यायालय का निर्णय। अतः अभिलेख की सामग्री के आधार पर हम संतुष्ट हैं कि विचारण न्यायालय ने इसका पूरी तरह से पालन किया है।

सी. आर. पी. सी. की धारा 235 (2) की आवश्यकता, अपने निष्कर्ष पर आते हुए, न्यायालय ने माना कि

अपराध, अर्थात दो नाबालिग लड़कियों के अपहरण, बलात्कार और हत्या के रूप में अपराध के परिमाण और करने का तरीका, अभियुक्त की कम करने वाली परिस्थितियों, यानी उसकी बूढ़ी माँ की उस पर निर्भरता और उसकी कम उम्र से अधिक है। न्यायालय ने आई. पी. सी. की धारा 376 और 506 और बॉम्बे बाल अधिनियम की धारा 57 के तहत नौ वर्षीय बालिका के बलात्कार के अपराध के साथ-साथ आई. पी. सी. की धारा 363 और 366 के तहत सात वर्षीय बालिका के अपहरण और बलात्कार के लिए भी अभियुक्त की पूर्व दोषसिद्धि को महत्व दिया। यहाँ यह ध्यान दिया जा सकता है कि उनकी दो पूर्व दोषसिद्धिओं के आलोक में, ट्रायल कोर्ट ने उन्हें होने का अवसर भी दिया आई. पी. सी. की धारा 75 के प्रश्न पर सुनवाई की गई, जो आई. पी. सी. के अध्याय XII या XVII के तहत कुछ अपराधों के लिए सजा बढ़ाने से संबंधित है।

पूर्व दोषसिद्धि के बाद, लेकिन इन दोषसिद्धि के तथ्य को भी याचिकाकर्ता द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी।

41. उच्च न्यायालय के समक्ष भी, याचिकाकर्ता द्वारा उसी प्रकृति के अपराधों से संबंधित एक मामले में अपने आरोपमुक्त करने के संबंध में और सामग्री रिकॉर्ड पर लाई गई थी, जिसे न्यायालय ने कम करने वाली परिस्थिति की प्रकृति में नहीं पाया। उच्च न्यायालय की राय थी कि वृद्ध माता-पिता की निर्भरता को भी शुरू में कम करने वाली परिस्थिति के रूप में नहीं माना जा सकता है, और यह कि आरोपी अपनी उम्र को कम करने वाली परिस्थिति के रूप में मानने के लिए पर्याप्त युवा नहीं था। उच्च न्यायालय ने अपराध करने के लिए किसी भी अत्यधिक मानसिक या भावनात्मक गड़बड़ी की अनुपस्थिति पर ध्यान दिया, और कहा कि अभियुक्त के पिछले अपमानजनक इतिहास को देखते हुए, उसके सुधार या पुनर्वास की कोई उम्मीद नहीं थी। अदालत ने अपराध की बर्बर प्रकृति पर भी ध्यान दिया, क्योंकि याचिकाकर्ता ने दो निर्दोष और रक्षाहीन लड़कियों के साथ क्रूरतापूर्वक बलात्कार किया और उनकी हत्या कर दी, इस विश्वास का दुरुपयोग करते हुए कि उन्होंने उसे अपने पड़ोसी के रूप में रखा था, और निष्कर्ष निकाला कि वह समाज के लिए खतरा पैदा करेगा, भले ही उसे कम से कम समय के लिए रिहा किया जाए।

और भविष्य में इसी तरह के कृत्य कर सकते हैं। इस आधार पर, उच्च न्यायालय ने अभियुक्त को दी गई मृत्युदंड की पुष्टि की।

42. सर्वोच्च न्यायालय ने 2007 की आपराधिक अपील संख्या 680 होने के कारण अपील में यह भी निर्धारित किया कि मामला दुर्लभतम की श्रेणी में आता है। दुर्लभ मामले।

स्वयं मंच। यह आगे कहा जा सकता है कि उच्च न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ता को इस पहलू पर आगे की सामग्री प्रस्तुत करने का अवसर धारा 235 (2) की आवश्यकता से ऊपर और परे था। अदालतों ने मृत्युदंड देने के निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले सभी परिचर परिस्थितियों को ध्यान में रखा था। यह भी मामला नहीं है कि आरोपी ने अलग से सजा सुनाने पर सुनवाई का अनुरोध किया था। तिथि और उसी को अस्वीकार कर दिया गया था। ऐसी परिस्थितियों में, हम इस तर्क को अस्वीकार करते हैं कि वर्तमान मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) में परिकल्पित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था।

44. अब हमें पद से संबंधित दूसरे मुद्दे पर विचार करने की आवश्यकता है।

मौत की सजा को आजीवन कारावास में बदलने के लिए एक शमन कारक के रूप में मानसिक बीमारी का दोषसिद्धि।

45. दोषसिद्धि के बाद की मानसिक बीमारी की घटना को समझना हमारे लिए उचित है। जैसा कि वाक्यांश से ही पता चलता है, दोषी साबित होने के बाद ही दोषी को ऐसी बीमारी हुई है। यह ठीक है। दुनिया भर में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि जेलों में रहना मुश्किल है। विश्व स्वास्थ्य संगठन और अंतर्राष्ट्रीय रेड क्रॉस, भीड़भाड़, हिंसा के विभिन्न रूपों, जबरन एकांत, गोपनीयता की कमी, अपर्याप्त स्वास्थ्य देखभाल जैसी कई परिस्थितियों की पहचान करते हैं।

सुविधाएँ, परिवार के बारे में चिंताएँ आदि कैदियों के मानसिक स्वास्थ्य पर असर डाल सकती हैं। इस तरह के मुद्दों के बारे में जागरूकता की कमी के कारण, कैदियों के पास कोई सहारा नहीं है और उनका मानसिक स्वास्थ्य ठीक नहीं है

दिन-ब-दिन खराब होता जा रहा है। ऐसे कैदियों के पक्ष में प्रचलित तर्क यह है कि; क्या ऐसे कैदियों पर मृत्युदंड लगाना उचित है, जिन्होंने इस तरह के दंड की प्रकृति और उद्देश्य और इस तरह के अधिरोपण के कारणों को समझने की अपनी क्षमताओं को स्पष्ट रूप से कम कर दिया है? उपरोक्त मुद्दों को बाद के चरण में विस्तार से निपटाया जाएगा।

46. अभियुक्त ने अब इसमें पहली बार दोषसिद्धि के बाद की मानसिक बीमारी का एक पूरी तरह से नया आधार प्रस्तुत किया है, जो हमें जाने के लिए मजबूर करता है।

नए सिरे से सजा सुनाने के पहलू में। यह भी हमारे संज्ञान में लाया गया है कि अपीलार्थी लगभग 17 वर्षों से मौत की सजा का दोषी है, जिसमें हमें सजा के मुद्दे को हल करने के लिए अनिवार्य किया गया है। इससे पहले कि हम [2019] 6 एस. सी. आर. पर विचार करें।

इसमें अभियुक्त के लिए उचित सजा, सजा देने की नीति से संबंधित पृष्ठभूमि सिद्धांतों का संदर्भ देने की आवश्यकता है।

यह देखते हुए कि वर्तमान याचिकाकर्ता एक शमन कारक का अनुरोध कर रहा है जो दोषसिद्धि के बाद उत्पन्न हुआ है।

47. सजा आपराधिक प्रतिबंधों का उचित आवंटन है, जो ज्यादातर न्यायिक शाखा द्वारा दिया जाता है। 2 यह प्रक्रिया अंत में होती है

एक मुकदमे का अभी भी एक आपराधिक न्याय की प्रभावकारिता पर एक बड़ा प्रभाव पड़ता है सिस्टम। यह स्थापित किया गया है कि सजा सुनाना एक सामाजिक-कानूनी प्रक्रिया है, जिसमें एक न्यायाधीश आरोपी के लिए एक उचित सजा पाता है।

तथ्यात्मक परिस्थितियाँ और समताएँ। इस तथ्य के आलोक में कि विधायिका ने न्यायाधीशों को सजा देने के लिए विवेकाधिकार प्रदान किया है, इसका सैद्धांतिक तरीके से प्रयोग करना महत्वपूर्ण हो जाता है। हमें यह समझने की आवश्यकता है कि सजा सुनाने में एक सख्त निश्चित सजा का दृष्टिकोण स्वीकार्य नहीं हो सकता है, क्योंकि न्यायाधीश के पास पर्याप्त विवेकाधिकार भी होना चाहिए।

49. भारत में सजा, न्यायिक अंतर्ज्ञान और कानून के शासन के सख्त अनुप्रयोग के बीच एक बीच का रास्ता है। हम कानून के शासन को जितना महत्व देते हैं, सजा सुनाने की प्रक्रिया को न्यायाधीश के लिए सैद्धांतिक विवेक को बनाए रखने की आवश्यकता है भारत में, सजा का नेतृत्व ज्यादातर मृत्युदंड के संदर्भ में 'दिशानिर्देश निर्णय' द्वारा किया जाता है, जबकि कई अन्य देश जैसे यूनाइटेड किंगडम और

2 निकोला पैडफील्ड, रॉड मॉर्गन और माइक मैग्वायर, 'कोर्ट से बाहर, दृष्टि से बाहर? आपराधिक प्रतिबंध और नहीं-न्यायिक निर्णय लेना ', द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ क्रिमिनोलॉजी (5 वां संस्करण)।

संयुक्त राज्य अमेरिका, सजा देने के दिशानिर्देशों में एक बुनियादी ढांचा प्रदान करता है। 50. हालांकि शुरुआत में, यह स्पष्ट किया जाता है कि यह न्यायालय एक 'निश्चित सजा नीति' निर्धारित नहीं कर सकता है, जो कि एक विधायी नीति है।

तथापि, भारत में न्यायालयों ने न्यायिक मानकों और सिद्धांतों के संबंध में इस समस्या को सैद्धांतिक तरीके से संबोधित किया है। न्यायिक रूप से निर्धारित ये सिद्धांत न केवल निर्देशात्मक दिशानिर्देशों के रूप में काम करते हैं, बल्कि सजा सुनाते समय विचारण न्यायाधीशों के आवश्यक विवेक को भी संरक्षित करते हैं। इस तरह का प्रयास सुप्रीम कोर्ट द्वारा सुनील दत्त शर्मा मामले (2014) 4 एस. सी. सी. 375 में पहले ही शुरू किया जा चुका है, जब

मृत्युदंड के संदर्भ में विकसित सजा के दिशानिर्देश कम सजा पर भी लागू किए गए थे। हालाँकि, सजा की एकरूपता प्राप्त करने के लिए न केवल न्यायिक प्रयासों की आवश्यकता हो सकती है, बल्कि विधायिका को भी कदम उठाने की आवश्यकता हो सकती है।

51. इसके अलावा, हमारा ध्यान आपराधिक न्याय प्रणाली में सुधारों पर मलिमथ समिति की रिपोर्ट की ओर भी आकर्षित किया गया है, जिसने सजा निर्धारित करने के लिए एक वैधानिक निकाय के निर्माण की सिफारिश की थी

दिशानिर्देश। सजा सुनाने के विवेक के खतरों को उजागर करने वाली उपरोक्त टिप्पणियों को समाप्त करने से पहले, हमें इन शब्दों की याद दिलाई जाती है -

न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर, जिन्होंने कहा कि "घातक क्षमता वाली निर्देशित मिसाइलें, दिशाहीन हाथों में, यहां तक कि न्यायिक भी, एक गंभीर जोखिम है जहां जोखिम नश्वर है, हालांकि अपीलीय प्रक्रिया द्वारा शांत किया गया है।" [राजेन्द्र प्रसाद बनाम का उल्लेख करें। उत्तर प्रदेश राज्य (1979) 3 एससीसी 646]

52. किसी भी मामले में, यह देखते हुए कि अभ्यास का एक बड़ा हिस्सा

सजा सुनाने का विवेकाधिकार सैद्धांतिक है, भारत में एक न्यायाधीश को इसे बनाए रखने की आवश्यकता है

सजा के व्यापक उद्देश्यों को ध्यान में रखें, जो प्रतिरोध, अक्षमता, पुनर्वास, प्रतिशोध और क्षतिपूर्ति (जहां भी लागू हो) हैं, जब तक कि विधायिका द्वारा विकल्प के रूप में विशेष रूप से निर्दिष्ट न किया जाए। ऊपर पहचाने गए उद्देश्य, कानून में अपराध-उन्मुख सजा से एक समग्र दृष्टिकोण की ओर बदलाव को चिह्नित करते हैं जिसमें अपराध, अपराधी और पीड़ित को सामूहिक रूप से ध्यान में रखा जाना चाहिए। 53. सजा सुनाने के कुछ सामान्य पहलुओं को देखने के बाद, बचन सिंह मामले (उपरोक्त) के बाद लागू हुए 'दुर्लभतम में दुर्लभतम' सिद्धांत के विश्लेषण में दोषसिद्धि के बाद की मानसिक बीमारी के पहलू को कम करने वाले कारक के रूप में विचार करना आवश्यक है।

54. एक प्रारंभिक बिंदु के रूप में हमें पियरे दुसाद बनाम का उल्लेख करने की आवश्यकता है। राजा सम्राट, ए. आई. आर. 1944 एफ. सी. 1 ने पहले ही निम्नलिखित तरीके से [2019] 6 एस. सी. आर. में दोषसिद्धि के बाद की मानसिक बीमारी को एक शमन कारक के रूप में मान्यता दी है।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

अपीलार्थी 25 वर्षीय एक युवक है जो दो बार विधवा हो चुका है। बिनि। पीड़ित उसकी 30 साल की चाची थी, जिसके पति (कंचन) ने लगभग छह साल पहले अपने ही भाई, अपीलार्थी के पिता की हत्या कर दी थी। कंचन को हत्या के लिए मौत की सजा सुनाई गई थी, लेकिन मौत की सजा के निष्पादन की प्रतीक्षा करते हुए उसने अपना विवेक खो दिया।

और अब उसे एक पागल के रूप में हिरासत में लिया गया है। इस मामले में साक्ष्य इस बात में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ता है कि अपीलार्थी को हत्या का सही दोषी ठहराया गया था। निस्संदेह क्रूर हमले के सटीक उद्देश्य के बारे में कुछ भ्रम है, जिसके लिए अपीलार्थी ने अपनी चाची को पीड़ित बनाया था। अभियोजन पक्ष ने आरोप लगाया कि अपीलार्थी एक विधुर होने के नाते उसकी चाची द्वारा उसकी मालकिन बनने से इनकार करने से दुखी था। विशेष न्यायाधीश के समक्ष अपने बयान में उन्होंने कहा कि एक अन्य चाचा (पीडब्लू 7), जो अपीलार्थी के अनुसार अभियोजन पक्ष के पीछे थे, के साथ अनुचित अंतरंगता के मामले में थे।

मृतक और अपीलार्थी के प्रति मृतक की ओर से दयालुता के छोटे-छोटे कृत्यों से भी नाराज था। द्वारा पसंद की गई अपील में

जेल अधिकारियों के माध्यम से उच्च न्यायालय में अपीलार्थी ने कहा कि उसकी चाची घटिया चरित्र की महिला थी और अवांछित ध्यान के साथ उसका पीछा कर रही थी। इस परिवार का पिछला इतिहास इंगित करता है कि अपीलार्थी संभवतः असंतुलित मन से पीड़ित है। उसकी चाची पर हमले की प्रकृति और क्रूरता इसकी पुष्टि करती है।

अपराध करने में अपीलार्थी को होना चाहिए था

ईर्ष्या या क्रोध से प्रेरित होने से उसके मन का संतुलन बिगड़ जाता है। इसके अलावा वह एक साल से अधिक समय से अपनी मौत की सजा की तामील का इंतजार कर रहा है। हम सोचते हैं कि इस मामले में मौत की सजा की तुलना में आजीवन कारावास की सजा अधिक उपयुक्त होगी। हम तदनुसार मौत की सजा को घटाकर आजीवन कारावास की सजा कर देते हैं और इस संशोधन के अधीन अपील को खारिज कर देते हैं।

(जोर दिया गया)

हालाँकि, यह मामला यह मूल्यांकन करने के लिए कोई दिशानिर्देश या सीमा प्रदान नहीं करता है कि किस प्रकार की मानसिक बीमारी को शामिल करने की आवश्यकता है।

न्यायालयों द्वारा विचार।

55. हम ध्यान देते हैं कि, आम तौर पर, शमन करने वाले कारक आपराधिक से जुड़े होते हैं और उत्तेजक कारक अपराध को अंजाम देने से संबंधित होते हैं।

अपराध। इन कम करने वाले कारकों में विचार शामिल हैं जैसे कि

अभियुक्त की आयु, सामाजिक-आर्थिक स्थिति आदि। हम ध्यान देते हैं कि 'अभियुक्त x' द्वारा दावा किया गया आधार अपराध और दोषसिद्धि के बाद लंबे समय के अंतराल के बाद उत्पन्न हो रहा है। इसलिए, इसे एक शमन कारक के रूप में शामिल करने का औचित्य मामले की समानताओं के साथ नहीं जुड़ता है, बल्कि मानक औचित्य संविधान के साथ-साथ 'दुर्लभतम में दुर्लभतम' सिद्धांत के न्यायशास्त्र में स्थापित है। अब यह तय हो गया है कि मृत्युदंड केवल दुर्लभतम से दुर्लभतम मामले में ही लगाया जा सकता है जिसके लिए परिस्थितियों की समग्रता पर विचार करने की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से, हमें दोषी ठहराए जाने के बाद की मानसिक बीमारी को 'दुर्लभतम में दुर्लभतम' मामले के रूप में अयोग्य घोषित करने के लिए एक निर्धारक कारक के रूप में शामिल करने का आकलन करना होगा।

56. सजा सुनाने में आम तौर पर अभियुक्त की स्वतंत्रता और स्वतंत्रता में कटौती शामिल होती है। संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत, जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार को तब तक बाधित नहीं किया जा सकता जब तक कि इसे न्यायिक कानूनों द्वारा नहीं लिया जाता है। इस मामले में हम मृत्युदंड से चिंतित हैं, जो अनिवार्य रूप से जीवन के अधिकार को प्रभावित करता है, और हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली के तहत विभिन्न ठोस और प्रक्रियात्मक सुरक्षा के अधीन है। जीवन के अधिकार का एक अपरिवर्तनीय मूल 'गरिमा' है। [नवतेज सिंह जौहर बनाम का संदर्भ लें। भारत संघ, एआईआर 2018 एससी 4321]। मानव गरिमा का अधिकार विभिन्न रंगों में आता है। [सामान्य कारण v का संदर्भ लें। भारत संघ, ए. आई. आर. 2018 एस. सी. 1665] हमारे उद्देश्यों के लिए, मनुष्य की गरिमा मानव स्वभाव में निहित समझ, तर्कसंगत विकल्प और स्वतंत्र इच्छा आदि की क्षमता को निहित करती है। एक अभियुक्त की गरिमा का अधिकार न्यायाधीशों की स्याही से समाप्त नहीं होता है, बल्कि यह जेल के द्वार से परे रहता है और उसकी अंतिम सांस तक चलता है। मानसिक रूप से बीमार कैदियों के संदर्भ में यह उल्लेख करना उचित है कि मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 की धारा 20 (1), 2017 का अधिनियम संख्या 10, स्पष्ट रूप से प्रदान करता है कि 'मानसिक बीमारी से पीड़ित प्रत्येक व्यक्ति को मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 की धारा 20 (1) में मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 की धारा 20 (1), मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 की धारा 20 (1), मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 की धारा 20 (1), मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 की धारा 20 (1), मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 की धारा 20 (1), मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 की धारा 20 (1), मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 की धारा 20 (1), मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 की धारा 20 (1), मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 की धारा 20 (1), मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 की धारा

57. सभी मनुष्यों में वे क्षमताएँ होती हैं जो उनके स्वभाव में निहित होती हैं, हालाँकि, शैशवावस्था, अक्षमता या वृद्धावस्था के कारण, वे अभी तक, अभी नहीं, या अब उन्हें प्रयोग करने की क्षमता नहीं रखते हैं। जब ऐसा होता है अक्षमता होती है, एक व्यक्ति [2019] 6 एस. सी. आर. को समझने की स्थिति में नहीं हो सकता है।

उसके कार्यों के निहितार्थ और इसके परिणाम। इस स्थिति में, ऐसे व्यक्ति को फांसी देने से कानून की महिमा कम हो जाएगी।

58. भारतीय संविधान का अनुच्छेद 20 (1) इस विचार को आत्मसात करता है।

अपराध और उसकी सजा के बारे में अभियुक्त के लिए संचार/जानकारी। यह संवादात्मक तत्व है, जो सजा (मृत्युदंड) में निहित है, जो आपराधिक कार्यवाही में दंड को अर्थ देता है। मृत्युदंड की धारणा और इसके साथ आने वाली पीड़ा, अक्षमता का कारण बनती है और प्रतिरोध की भावना का आह्वान करने के लिए आदर्श है। यदि अभियुक्त अपनी अक्षमता के कारण अपने निष्पादन के प्रभाव और उद्देश्य को समझने में सक्षम नहीं है, तो निष्पादन का कारण ही समाप्त हो जाता है।

59. एटकिंस बनाम को संदर्भित करना संदर्भ से बाहर नहीं हो सकता है। वर्जीनिया, 536

यू. एस. 304 (2002), जिसमें संयुक्त राज्य अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय, इस सवाल पर विचार करते हुए कि क्या मानसिक रूप से विकलांग व्यक्तियों को फांसी दी जाती है।

“ क्रूर और असामान्य सजा "आठवें संशोधन द्वारा निषिद्ध?" अदालत ने नोट किया कि न तो मानसिक रूप से विकलांग या मंदबुद्धि को फांसी दी गई

मृत्युदंड के निवारक प्रभाव को बढ़ाता है और न ही मानसिक रूप से विकलांग लोगों को निष्पादित न करने से निरोध के लक्ष्य में बाधा आएगी।

60. इसके अलावा, संविधान का अनुच्छेद 20 व्यक्तियों को गारंटी देता है।

अत्यधिक आपराधिक दंड के अधीन नहीं होने का अधिकार। दाहिनी ओर आनुपातिकता के मूल सिद्धांत से बहती है। जघन्य अपराधों के लिए दोषी ठहराए गए लोगों की भी रक्षा करके, यह अधिकार सभी व्यक्तियों की गरिमा का सम्मान करने के कर्तव्य की पुष्टि करता है। इसलिए, हमारा संविधान व्यापक और गरिमा, सभ्य मानकों, मानवता और शालीनता की आदर्शवादी अवधारणाएँ जिनके खिलाफ दंडात्मक उपायों का मूल्यांकन किया जाना है। इन सभ्य मानकों को मान्यता देते हुए, हम विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर कन्वेंशन के हस्ताक्षरकर्ता होने में भारत की आकांक्षाओं का उल्लेख कर सकते हैं, जो विकलांग व्यक्तियों के संबंध में 'क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक दंड के निषेध' का समर्थन करते हैं। इसके अतिरिक्त, जब इंग्लैंड में मृत्युदंड मौजूद था, तो पागल कैदियों को फांसी देने पर रोक लगाने वाला एक सामान्य कानून अधिकार था। 3 इसके अतिरिक्त, मानसिक बीमारी वाले व्यक्तियों के निष्पादन के खिलाफ एक मजबूत अंतर्राष्ट्रीय सहमति है। 4

3 हेल्स प्लेज़ ऑफ़ द क्राउन वॉल्यूम। आई-पी। 33 ; कोक के संस्थान, वॉल्यूम। III, पृष्ठ। 6 ; इंग्लैंड के कानूनों पर ब्लैक-स्टोन की टिप्पणियां खंड। IV, पृष्ठ 18 और 19; ", एक परिचय

आपराधिक कानून ", रूपर्ट क्रॉस द्वारा, (1959), पी। 67 . 4 मानवाधिकार संकल्प आयोग 2000/65 मृत्युदंड का प्रश्न, मानवाधिकार पर संयुक्त राष्ट्र आयोग (27 अप्रैल, 2000); जी. ए. रेस 69/186 , ¶ 5 (घ) (4 फरवरी, 2015); 'एक्स' वी।

61. हम ध्यान दे सकते हैं कि भारत में विभिन्न जेल नियम यह भी मानते हैं कि आम तौर पर सरकार का कर्तव्य है कि वह उचित आदेश पारित करे

निष्पादन पर, यदि कोई व्यक्ति पागल पाया जाता है। आंध्र प्रदेश जेल

नियम, 1979, नियम 796; गुजरात जेल (पागल) नियम, 1983; दिल्ली जेल नियम, 2018, नियम 824; तमिलनाडु जेल नियम, 1983, नियम 923; महाराष्ट्र जेल नियमावली, 1979, अध्याय XLII (सरकार)

अधिसूचना, गृह विभाग, सं। आर. जे. एम.-1058 (एक्स. एल. वी. आई.)/12,495-XVI, दिनांक 18.01.1971; गृह मंत्रालय द्वारा मॉडल प्रिज़न मैनुअल (2016), नियम 12.36 भारत में कानूनी उपकरणों के कुछ उदाहरण हैं जो पहले से ही दोषी ठहराए जाने के बाद की मानसिक बीमारी को सरकार के लिए अपने क्षमादान अधिकार क्षेत्र के तहत विचार करने के लिए एक प्रासंगिक कारक के रूप में मान्यता दे चुके हैं।

62. मृत्युदंड के मामले में दोषसिद्धि के बाद की मानसिक बीमारी को कम करने वाले कारक के रूप में मान्यता देने के लिए मानक आधार को समझने के बाद,

हमें यह उल्लेख करना चाहिए कि शत्रुघ्न चौहान मामले (उपरोक्त) ने इसकी पहचान की थी और यह निम्नानुसार हैः

" 86. उपरोक्त सामग्री, विशेष रूप से, संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के निर्देश, जिनमें भारत एक पक्ष है, स्पष्ट रूप से

यह दर्शाइए कि पागलपन/मानसिक बीमारी/सिज़ोफ्रेनिया एक महत्वपूर्ण पर्यवेक्षी परिस्थिति है, जिस पर इसके द्वारा विचार किया जाना चाहिए।

यह तय करने में कि क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में मौत की सजा को आजीवन कारावास में परिवर्तित किया जा सकता है। इसे स्पष्ट रूप से कहने के लिए, "पागलपन" इस न्यायालय द्वारा विचार के लिए एक प्रासंगिक पर्यवेक्षण कारक है। "

63. अब हमें इस तरह के शमन कारक के लिए योग्य अभियुक्त की पहचान करने के लिए परीक्षण पर विचार करने की आवश्यकता है। यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि पागलपन

आई. पी. सी. के तहत मान्यता प्राप्त और वर्तमान मामले में हम जिस मानसिक बीमारी पर विचार कर रहे हैं, वह एक अलग चरण और समय पर उत्पन्न होती है। आई. पी. सी. के तहत, धारा 84 आपराधिक के खिलाफ बचाव के रूप में कानूनी पागलपन की याचिका को मान्यता देती है। अभियोजन। [सुरेंद्र मिश्रा बनाम का संदर्भ लें। झारखंड राज्य, (2011) 3 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 232] यह बचाव इसके अनुप्रयोग में प्रतिबंधित है और अपराध किए जाने के क्षण से संबंधित है। इसलिए, आई. पी. सी. की धारा 84 अपराध के समय पुरुषों के अधिकार से संबंधित है, जबकि दोषसिद्धि के बाद की मानसिक बीमारी की याचिका सजा की सराहना और गरिमा के अधिकार पर आधारित है। [अमृत भूषण गुप्ता बनाम का संदर्भ लें। भारत संघ, ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 608] उपरोक्त को रेखांकित करने वाले विभिन्न मानक मानकों का परिणामस्वरूप अलग-अलग सीमा मानकों का भी अर्थ है।

64. दूसरी ओर, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि मामला प्रक्रिया के अंतिम चरण में है और कम करने वाले कारक जिन पर ऊपर चर्चा की गई है अपराध के समय आकस्मिक नहीं थे, इसलिए

इस आधार का उपयोग केवल मानसिक बीमारी के चरम मामलों में किया जाना चाहिए, जो कि सीमांत प्रतिशोध के तत्व को ध्यान में रखते हुए जीवित रहता है। किसी भी मामले में, यह देखते हुए कि भारत ने एक अंतरराष्ट्रीय मंच पर मानसिक रोगियों को क्रूर और असामान्य दंड के साथ दंडित नहीं करने का दायित्व लिया है, इस न्यायालय के लिए एक परीक्षण का प्रावधान करना आवश्यक होगा जिसमें केवल मानसिक रूप से बीमार दोषियों के चरम मामलों को ही निष्पादित नहीं किया जाता है। इसके अलावा, यह न्यायालय इस तरह के बचाव का अनुरोध करके फांसी से बचने के लिए एक चाल के रूप में इस उक्ति के उपयोग के खिलाफ चेतावनी देता है, भले ही ऐसा भोजन गंभीर गंभीरता का न हो।

65. इससे पहले कि हम इस मामले का विश्लेषण करें, मानसिक बीमारी के वर्गीकरण और मृत्युदंड पर इसके प्रभाव के एक संक्षिप्त सर्वेक्षण पर विचार करने की आवश्यकता है। मानसिक निदान और सांख्यिकीय नियमावली

विकार (डी. एस. एम.), अमेरिका में मानसिक विकारों के लिए सबसे प्रसिद्ध वर्गीकरण और नैदानिक मार्गदर्शकों में से एक है। 2013 में प्रकाशित इसका पांचवां संस्करण (डी. एस. एम. 5) मानसिक विकार को निम्नानुसार परिभाषित करता हैः -

मनोवैज्ञानिक, जैविक या विकासात्मक प्रक्रियाएँ अंतर्निहित मानसिक कार्यप्रणाली। मानसिक विकार आमतौर पर सामाजिक, व्यावसायिक या अन्य महत्वपूर्ण गतिविधियों में महत्वपूर्ण संकट से जुड़े होते हैं। अपेक्षित या सांस्कृतिक रूप से

एक सामान्य तनाव या हानि के लिए स्वीकृत प्रतिक्रिया, जैसे कि किसी प्रियजन की मृत्यु, एक मानसिक विकार नहीं है। सामाजिक रूप से विचलित व्यवहार (जैसे, राजनीतिक, धार्मिक या यौन) और संघर्ष जो मुख्य रूप से व्यक्ति और समाज के बीच होते हैं, वे मानसिक नहीं होते हैं।

विकार जब तक कि विचलन या संघर्ष एक शिथिलता के परिणामस्वरूप न हो

व्यक्ति में, जैसा कि ऊपर वर्णित है।

66. ' 'रोगों के अंतर्राष्ट्रीय वर्गीकरण (आई. सी. डी.)' के तहत 'गंभीर मानसिक बीमारी', जिसे मानसिक रोग की धारा 3 के तहत स्वीकार किया जाता है।

स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 में आम तौर पर शामिल हैंः

1. स्किज़ोफ्रेनिक और भ्रम संबंधी विकार

2. अवसाद, उन्मादी और अवसाद सहित मनोदशा (भावात्मक) विकार

3 . फोबिक, पैनिक और जुनूनी सहित न्यूरोसिस-बाध्यकारी

विकार

4. भोजन, नींद और तनाव सहित व्यवहार संबंधी विकार

विकार

5. विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व विकार।

67. अमेरिकन बार एसोसिएशन, अगस्त 2006 को पारित अपने प्रस्ताव 122 ए द्वारा, निम्नानुसार नोट करता हैः

(क) निष्पादन को शामिल करने के लिए आधार। यदि कैदी को कोई मानसिक विकार या अक्षमता है जो उसकी क्षमता को महत्वपूर्ण रूप से बाधित करती है तो मौत की सजा नहीं दी जानी चाहिए (i) दोषसिद्धि या सजा की वैधता को चुनौती देने के लिए उपलब्ध दोषसिद्धि के बाद की कार्यवाही को छोड़ने या समाप्त करने का तर्कसंगत निर्णय लेना; (ii) दोषसिद्धि या सजा की वैधता से संबंधित विशिष्ट दावों के संबंध में प्रासंगिक जानकारी को समझना या संवाद करना, या अन्यथा वकील की सहायता करना, जिसे कैदी की भागीदारी के बिना उचित रूप से हल नहीं किया जा सकता है; या (iii) सजा की प्रकृति और उद्देश्य को समझना, या उसके कारण की सराहना करना। कैदी के अपने मामले में अधिरोपण।

68. उपरोक्त चर्चा के अनुरूप, हम ध्यान देते हैं कि 'गंभीर मानसिक बीमारी' के मूल्यांकन के लिए कोई निर्धारित विकार/अक्षमता प्रतीत नहीं होती है, हालांकि 'गंभीरता का परीक्षण' पहचानने के लिए एक मार्गदर्शक कारक हो सकता है।

वे मानसिक रोग जो छूट के लिए योग्य हैं। इसलिए, यहाँ परिकल्पित परीक्षण यह भविष्यवाणी करता है कि अपराधी को एक गंभीर परीक्षण की आवश्यकता है।

मानसिक बीमारी या अक्षमता, जिसका सीधा सा अर्थ है कि एक चिकित्सा पेशेवर निष्पक्ष रूप से बीमारी को सबसे गंभीर मानेगा ताकि वह इस तरह की सजा देने के पीछे की प्रकृति और उद्देश्य को समझ या समझ न सके। इन विकारों में आम तौर पर सिज़ोफ्रेनिया, अन्य गंभीर मनोवैज्ञानिक विकार और विघटनकारी विकार शामिल हैं-सिज़ोफ्रेनिया के साथ।

69. उपरोक्त चर्चा के आलोक में भविष्य के मामलों में निम्नलिखित निर्देशों का पालन करने की आवश्यकता है।

कि दोषी ठहराए जाने के बाद गंभीर मानसिक बीमारी होगी

ए।

कम करने वाला कारक कि अपीलीय न्यायालय, उपयुक्त मामलों में,

अभियुक्त को मौत की सजा सुनाते समय विचार करने की आवश्यकता है

दंड।

बी। ऐसी अक्षमता का मूल्यांकन योग्य पेशेवरों (अनुभवी) की एक बहु-अनुशासनात्मक टीम द्वारा किया जाना चाहिए।

चिकित्सा व्यवसायी, अपराध विज्ञानी आदि), जिनमें शामिल हैं

अभियुक्त की विशेष मानसिक स्थिति में विशेषज्ञता के साथ पेशेवर

बीमारी। आरोपी पर यह बोझ है कि वह प्रमुखता से साबित करे

सी।

इसका स्पष्ट प्रमाण है कि वह गंभीर मानसिक बीमारी से पीड़ित है। अभियुक्त को सक्रिय, अवशिष्ट या प्रोड्रोमल लक्षणों को प्रदर्शित करना होता है, कि गंभीर मानसिक अक्षमता थी

प्रकट कर रहा है।

डी। राज्य इस तरह के दावे का खंडन करने के लिए सबूत पेश कर सकता है।

उचित मामलों में न्यायालय प्रस्तुत करने के लिए एक पैनल का गठन कर सकता है

ई.

विशेषज्ञ की रिपोर्ट।

' यहाँ परिकल्पित 'गंभीरता का परीक्षण' भविष्यवाणी करता है कि अपराधी

एफ.

गंभीर मानसिक बीमारी या अक्षमता की आवश्यकता होती है, जिसका सीधा सा मतलब है कि वस्तुनिष्ठ रूप से बीमारी सबसे गंभीर होनी चाहिए ताकि आरोपी इस तरह की सजा देने के पीछे की प्रकृति और उद्देश्य को समझ या समझ न सके।

70. ऐसा कहने के बाद, यह विचार करने की आवश्यकता है कि अभियुक्त ने वर्ग-I मनोचिकित्सक, यरवदा केंद्रीय कारागार की एक रिपोर्ट दर्ज की है, जिसमें कहा गया है कि वह किसी प्रकार की मानसिक बीमारी से पीड़ित था।इस तरह के मूल्यांकन के लिए किसी भी वस्तुनिष्ठ कारक को शामिल करना। हम पुनः उत्पन्न कर सकते हैं

पूर्वनिर्धारित रिपोर्ट दिनांक 25.09.2014, निम्नलिखित तरीके से

नैदानिक प्रभावः - कोई भ्रम नहीं, कोई मतिभ्रम नहीं, नींद और

टिप्पणीः -नियमित रूप से दवा लेना और सुधार बनाए रखना। वह 21.12.1994 के बाद से मनोरोग उपचार के तहत ओ. पी. डी. में है। और तब से नियमित उपचार ले रहे हैं। वर्तमान में वह एंटी पर है।

मनोवैज्ञानिक दवाएँ।

डॉक्टर ने आगे कहा कि वह दवा, अच्छे आहार में अच्छा सुधार बनाए हुए हैं। उसे मनोवैज्ञानिक गड़बड़ी हो रही है और खुराक लेने पर चिड़चिड़ापन जैसे लक्षण सामने आते हैं।

कम हो गया।

71. इसके अलावा, एक मनोचिकित्सक द्वारा दी गई विशेषज्ञ राय ने ए. सी. सी. यू. एस. ई. डी. 'एक्स' वी. के समन्वयक के रूप में काम करते हुए महाराष्ट्र चिकित्सा परिषद को पंजीकृत किया।

सेंटर फॉर मेंटल हेल्थ लॉ एंड पॉलिसी, इंडियन लॉ सोसाइटी, पुणे, कोई और स्पष्टता प्रदान नहीं करता है। हम उपरोक्त रिपोर्ट द्वारा प्राप्त निष्कर्ष को भी निकाल सकते हैं।

जबकि मानसिक के संबंध में कोई निश्चित राय नहीं दी जा सकती है।

अभियुक्त 'एक्स' की स्वास्थ्य स्थिति और उपचार किया जा रहा है

अभियुक्त एक्स के मेडिकल रिकॉर्ड और उसकी नैदानिक जांच करने के लिए उसकी वर्तमान मनोरोग स्थिति का आकलन करने के लिए।

(जोर दिया गया)।

72. भले ही हम इस तरह के बयानों से संतुष्ट नहीं हैं

डॉक्टरों द्वारा किया गया क्योंकि मूल्यांकन अधूरा प्रतीत होता है। हालाँकि, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि वर्तमान अभियुक्त 1994 से किसी प्रकार की मानसिक चिड़चिड़ापन के दौर से गुजर रहा है, जैसा कि हमारे सामने रखे गए अभिलेखों से स्पष्ट है। इसके अलावा, उन्होंने लंबे समय तक कारावास के साथ-साथ मौत की सजा का भी सामना किया है। परिस्थितियों की समग्रता में, हम इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उसकी मानसिक स्थिति के पुनर्मूल्यांकन के लिए एक पैनल का गठन करना उचित नहीं मानते हैं।

73. साथ ही, हम इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते कि

आजीवन कारावास की सजा तत्काल मामले में पूरी तरह से अपर्याप्त होगी। अपराध करने के बर्बर और क्रूर तरीके, अपराध की गंभीरता, याचिकाकर्ता द्वारा पीड़ितों के विश्वास का दुरुपयोग और ऐसे अपराध करने की उसकी प्रवृत्ति को देखते हुए जो उसके पिछले आचरण से स्पष्ट है, यह अत्यंत स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता समाज के लिए इतना गंभीर खतरा पैदा करता है कि उसे किसी भी समय स्वतंत्र रूप से घूमने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। मामले के इस दृष्टिकोण में, हम यह निर्देश देना उचित समझते हैं कि याचिकाकर्ता अपने शेष जीवन के लिए जेल में रहेगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस न्यायालय ने कई निर्णयों में इस तरह के दृष्टिकोण को पूरी तरह से अपनाने की अपनी शक्ति के भीतर माना है, और यह कि यह मौत की सजा और आजीवन कारावास के सरलीकरण (जो आमतौर पर माफी पर 14 साल की जेल तक काम करता है) के बीच मीडिया के माध्यम से उपयोगी कार्य करता है। (उदाहरण के लिए स्वामी श्रद्धानंद को देखें। (2) वी. कर्नाटक राज्य, (2008) 13 एस. सी. सी. 767; भारत संघ बनाम वी. श्रीहरण, (2016) 7 एस. सी. सी. 1; तत्तु लोधी बनाम। मध्य प्रदेश राज्य (2016) 9 एस. सी. सी. 675)।

19] 6 एस सी आर।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

74. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, याचिका को इस हद तक अनुमति दी जाती है कि याचिकाकर्ता को दी गई मौत की सजा को कम कर दिया जाए

क्षमा के किसी भी अधिकार के बिना अपने शेष जीवन के लिए कारावास।

75. इसके अलावा, यह 'अभियुक्त x' की स्थिति है जो राज्य को माता-पिता के संरक्षक के रूप में कार्य करने के लिए बाध्य करती है। इस स्थिति में 'अभियुक्त x' को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है और

सड़ने के लिए छोड़ दिया जाता है, बल्कि उसे देखभाल और उपचार की आवश्यकता होती है। आम तौर पर, यह समझने की आवश्यकता है कि कैदियों में मानसिक बीमारी के प्रति लगाव बढ़ जाता है। 5 इसके अलावा, आपराधिक न्याय प्रणाली के भीतर व्यापक मानसिक बीमारी की मान्यता पर कानूनी बाधाओं के कारण, जेल अनिवार्य रूप से विभिन्न डिग्री के मानसिक रूप से बीमार कैदियों की एक बड़ी संख्या के लिए घर बन जाते हैं। इस तथ्य की कोई अनदेखी नहीं है कि जेल की दीवारों के भीतर की वास्तविकताएं इन्हें अच्छी तरह से जटिल और जटिल बना सकती हैं।

समस्याएँ। 6 76. इसे संबोधित करने के लिए, मानसिक स्वास्थ्य सेवा अधिनियम, 2017 को लागू किया गया था। इस अधिनियम की आकांक्षा कैदियों सहित जरूरतमंद लोगों के लिए मानसिक स्वास्थ्य देखभाल सुविधा प्रदान करना था। राज्य सरकारें अधिनियम की धारा 103 के तहत प्रत्येक राज्य और केंद्र शासित प्रदेश में कम से कम एक जेल की चिकित्सा शाखा में एक मानसिक स्वास्थ्य प्रतिष्ठान स्थापित करने के लिए बाध्य हैं, और मानसिक बीमारी वाले कैदियों को आमतौर पर उक्त मानसिक स्वास्थ्य में भेजा जा सकता है और उनकी देखभाल की जा सकती है।

77. इसलिए, हम राज्य सरकार को निर्देश देते हैं कि 'अभियुक्त x' के मामले पर मानसिक न्याय के उपयुक्त प्रावधानों के तहत विचार किया जाए। स्वास्थ्य सेवा अधिनियम, 2017 और यदि हकदार पाया जाता है, तो उस अधिनियम के तहत उसके अधिकारों का प्रावधान करें।

78. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, इस समीक्षा याचिका को उपरोक्त शर्तों में आंशिक रूप से अनुमति दी गई है और लंबित आवेदन, यदि कोई हों, तो उनका भी निपटारा कर दिया जाएगा।

समीक्षा याचिका की

आंशिक रूप से अनुमति है।

5 हालाँकि इन पर आंकड़े सभी भारतीय जेलों के लिए उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन हम कुछ भारतीय जेलों के भीतर नमूने के अध्ययन और मनोचिकित्सा रुग्णता पर साहित्य की तुलना करने में सक्षम थे। 6 लाइब्लिंग, मारुना और मैकएरा आदि। , द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ क्रिमिनोलॉजी (छठा संस्करण। (2017)) .